RNI : UPHIN/2009/30450 ISSN : 2319-2178 (P) ISSN : 2582-6603 (O)

पीयर रिव्यूड जर्नल

मधुराक्षर

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण का उपक्रम

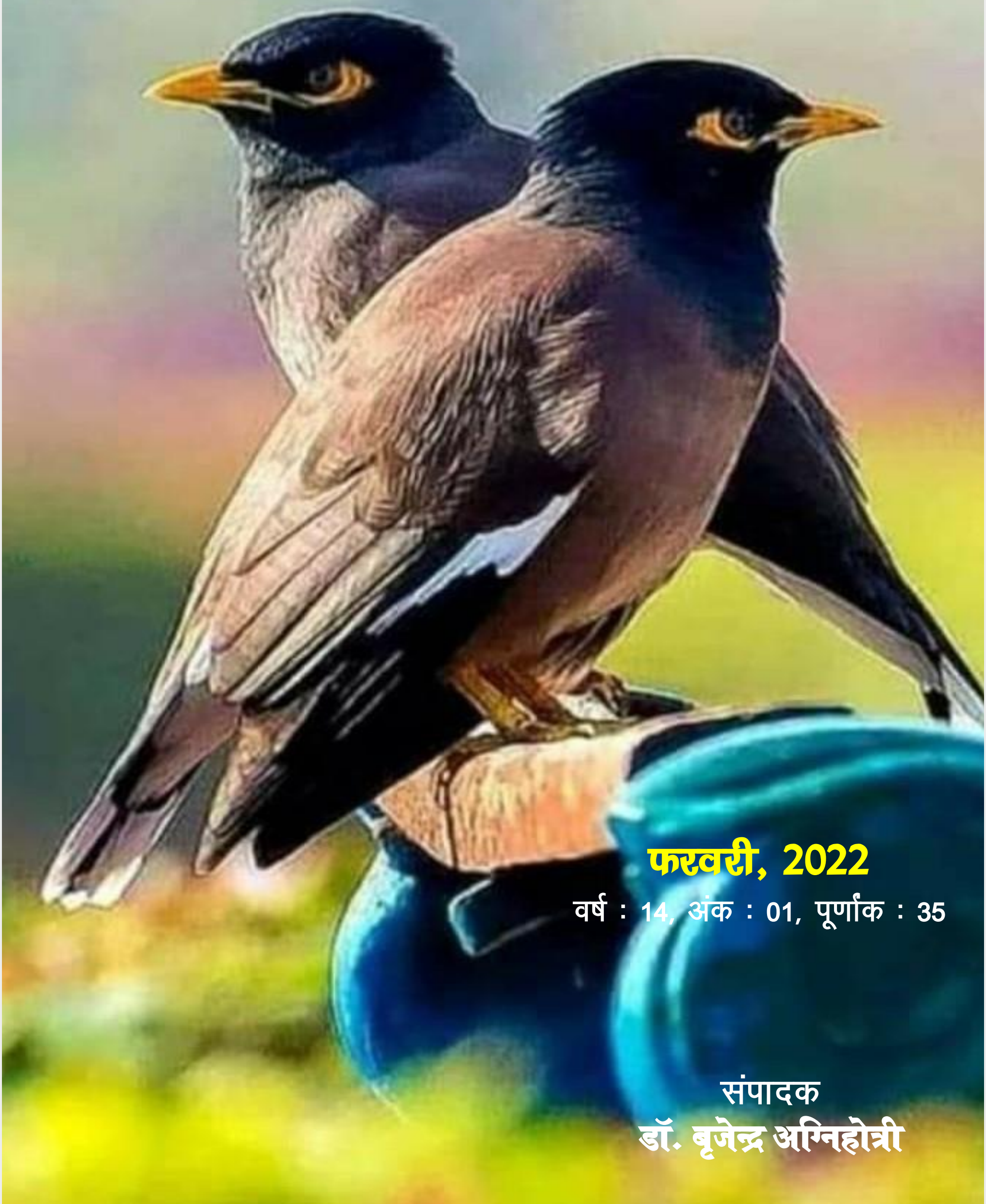

फरवरी, 2022

वर्ष : 14, अंक : 01, पूर्णांक : 35

संपादक

डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

RNI : UPHIN/2009/30450 ISSN : 2319-2178 (P) ISSN : 2582-6603 (O)

संरक्षक परिषद

श्रीमती चित्रा मुद्गल
प्रो. गिरीश्वर मिश्र
प्रो. अशोक सिंह
प्रो. हितेंद्र मिश्र
डॉ. कृष्णा खत्री
डॉ. बालकृष्ण पाण्डेय
डॉ. अश्विनीकुमार शुक्ल

संपादक परिषद

डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री (संपादक)
श्री पंकज पाण्डेय (उप-संपादक)
श्रीमती शालिनी सिंह (उप-संपादक)
डॉ. चुकी भूटिया (उप-संपादक)
डॉ. ऋचा द्विवेदी (उप-संपादक)
डॉ. आरती वर्मा (उप-संपादक)

परामर्श-विशेषज्ञ परिषद

डॉ. दमयंती सैनी
डॉ. दीपक त्रिपाठी
श्री मनस्वी तिवारी
श्री राम सुभाष
श्री जयकेश पाण्डेय
श्री महेशचंद्र त्रिपाठी
डॉ. शैलेष गुप्त 'वीर'
श्री मृत्यंजय पाण्डेय
श्री जयेन्द्र वर्मा

आवरण : **मुल्लू फतेहपुरी**

संपादक
डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री
सहायक प्रोफेसर (हिंदी)
सामाजिक विज्ञान एवं भाषा संकाय
लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय, पंजाब

मधुराक्षर

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण का उपक्रम

फरवरी, 2022
वर्ष : 14, अंक : 01, पूर्णांक : 35

पूर्णतः अव्यावसायिक एवं अवैतनिक प्रकाशन

ई-संस्करण

सहयोग

एक प्रति : 30 रुपये

व्यक्तियों के लिए

वार्षिक : 110 रुपये
त्रैवार्षिक : 300 रुपये
आजीवन : 2500 रुपये

संस्थाओं के लिए

वार्षिक : 150 रुपये
त्रैवार्षिक : 450 रुपये
आजीवन : 5000 रुपये

विदेशों के लिए (हवाई डाक)

एक अंक : 6 $
वार्षिक : 24 $
आजीवन : 300 $

सदस्यता शुल्क का भुगतान भारतीय स्टेट बैंक की किसी शाखा में खाता क्रमांक- **10946443013** (IFS Code- SBIN0000076, MICR Code - 212002002) या 'मधुराक्षर' के बैंक खाता क्रमांक **31807644508** (IFS Code- SBIN0005396, MICR Code- 212002004) में करें।

मधुराक्षर में प्रकाशित सभी लेखों पर संपादक की सहमति हो, यह आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री की सत्यता व मौलिकता हेतु लेखक स्वयं जिम्मेदार है। पत्रिका में प्रकाशित किसी भी लेख पर आपत्ति होने पर उसके विरुद्ध कार्यवाही केवल फतेहपुर न्यायालय में होगी।

मुद्रक, प्रकाशक एवं स्वामी
बृजेन्द्र अग्निहोत्री द्वारा स्विफ्ट प्रिन्टर्स, 259, कटरा अब्दुलगनी, चौक, फतेहपुर से मुद्रित कराकर जिला कारागार, मनोहर नगर फतेहपुर (उ.प्र.) 212601 से प्रकाशित।

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण की पत्रिका

मधुराक्षर

फरवरी, 2022

संपादक
डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

संपादकीय कार्यालय
जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212 601

E-Mail :
madhurakshar@gmail.com

Visit us :
www.madhurakshar.com
www.madhurakshar.blogspot.com

www.facebook.com/agniakshar

चलित वार्ता
+91 9918695656

एक नज़र में...

संपादकीय

अपनी बात	बृजेन्द्र अग्निहोत्री	.05

कथा—साहित्य

बिरधा आसरम	डॉ. विकास कुमार	.08
औलादों वाली मां	श्यामल बिहारी महतो	.15
बदरंग जिंदगी	महेश कुमार केशरी	.22
कहीं देर न हो जाए...	डॉ. पूरन सिंह	.29
10वीं का इम्तिहान	राजेश कुमार	.33
तीसरा जेंडर	भावना ठाकर	.37

कथेतर गद्य

जीवन में श्रम की महत्ता	शंकरलाल माहेश्वरी	.39
सामाजिक क्रांति के...	डॉ. कांतिलाल यादव	.43
पहचान खोते पारंपरिक...	अमित बैजनाथ गर्ग	.50
समाज की उन्नति...	डॉ. दीपा 'दीप'	.53
मुनिया से महानायक	सरोज राम मिश्रा	.55
बसंत पंचमी का महात्म्य	गोवर्धनदास बिन्नाणी 'राजा बाबू'	.58
अमृतराय का साहित्यिक...	डॉ. उर्मिला शर्मा	.62
पारसनाथ की यात्रा	रोहित यादव	.66

कृति—चर्चा

शिगाफ़ (उपन्यास) : मनीषा कुलश्रेष्ठ (डॉ. शिराजोद्दीन) .68

ताश के पत्ते (उपन्यास) : सोहेल रज़ा (ममता जयंत) .77

सरहदों के पार दरख़्तों के साये में (काव्य संग्रह) : रेखा भाटिया (सुधा ओम धींगरा) .80

मन बोहेमियन (कहानी संग्रह) : रामनगीना मौर्य (विजय तिवारी) .84

अँगूठे पर वसीयत (उपन्यास) : शोभनाथ शुक्ल (सुरेशचंद्र शर्मा) .93

काव्य सुरसरि

व्याप्ति कविता की	शैलेंद्र चौहान	.100
प्रेमयात्रा	मौसमी चंद्रा	.101
बुजुर्ग बूढ़े हो रहे हैं	घनश्याम शर्मा	.102
जीवन चलता ही रहता है	निशेष अशोक वर्द्धन	.103
रवि ने पट खोला	टीकेश्वर सिन्हा 'गब्दीवाला'	.105
शब्द हूं मैं	समीर उपाध्याय	.106
लापता	संजय कुमार सिंह	.107
दो गजलें	विज्ञान व्रत	.108

संपादकीय

अपनी बात

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी आलोचकों को उनके कर्तव्यों से परिचित कराते हुए कहते हैं– *'समालोचक का कर्तव्य है कि वह इस बात पर विचार करे कि किसी पुस्तक या प्रबंध में क्या लिखा गया है, किस ढंग से लिखा गया है, वह विषय उपयोगी है या नहीं, उससे किसी का मनोरंजन हो सकता है या नही, यही विचारणीय है।'* आचार्य श्यामसुन्दर दास 'आलोचना' को परिभाषित करते हुए कहते हैं– *'यदि साहित्य को जीवन की व्याख्या मानें तो आलोचना को व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा।'* तात्पर्य यह है कि सर्जना की सर्जना करने के कारण आलोचक पुनर्सर्जक होता है। स्पष्ट है कि रचना को स्थापित करने का दायित्व आलोचक का होता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आलोचना का जो स्वरूप दिखाई पड़ता है, उसमें प्रवंचना के साथ आत्म–मुग्धता से आलोचक में जन्मा 'अहम' भाव प्रायः समाहित होता है। अधिकांश लेखक स्वयं को स्थापित करने के लिए आलोचक बनने को लालायित रहते हैं। ऐसे लेखक ही कथित 'गठबंधन' करके 'आलोचना का संकट' खड़ा कर देते हैं। एक–दूसरे की मानक–विहीन आलोचना करके 'आलोचक' की गरिमा को धूमिल करते हैं।

'आलोचना' के संकट' का प्रमुख और महत्वपूर्ण कारक संबंधित कृति के अध्ययन, चिंतन और मनन में कमी भी है। ऐसे अनेक कथित आलोचक मिल जायेंगे, जिन्होंने आलोचना हेतु एक निर्धारित प्रारूप बना रखा होगा। इस प्रारूप में कृति को ढालकर तत्काल कृति की आलोचना कर देते हैं। हालांकि ऐसी आलोचना और आलोचक, दोनों का प्रभाव अल्प समय तक ही रहता है। ऐसे आलोचकों के लिए डॉ. अनिल कुमार जैन (उज्जैन) की निम्न पंक्तियों पर ध्यान देना चाहिए–

'है बहुत आसान मौजों का तमाशा देखना,
गहरे पानी पैठ जाना, किसके वश की बात है।'

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के पूर्व भी 'आलोचना का संकट' लगभग ऐसा ही था। न कोई आदर्श, न कोई सिद्धांत. न कोई आग्रह, न कोई धारणा। आलोचक अपने व्यक्तिगत पूर्वाग्रह के कारण किसी भी रचनाकार को श्रेष्ठ या हीन सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। काफी हद तक यही परंपरा पुनः दृष्टिगत हो रही है, जिसके कारण 'आलोचना' पर घने काले बादल छाते जा रहे हैं। ऐसे कथित आलोचकों (जो स्वयं आलोचना के संकट बन गये हैं) की मनःस्थिति को गजलकार धीरज चौहान (नई दिल्ली) के शे'र से समझा जा सकता है–

'दुनिया के दस्तूर निभाने की खातिर,
रोज नए किरदार को गढ़ना पड़ता है।'

हिंदी साहित्य में शुक्ल जी ने आलोचना के नवीन मानदंडों की स्थापना की और आलोचना पद्धति का सुनिश्चित पथ निर्मित किया। आचार्य शुक्ल युगीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में ही किसी कृति की आलोचना पर बल देते थे। उनके प्रयासों से उस समय 'आलोचना का संकट' कम हुआ और पं. कृपाशंकर शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दर दास, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, रमाशंकर शुक्ल, पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र, बाबू गुलाबराय, रामविलास शर्मा, अमृतराय, शिवदान सिंह चौहान, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी और नामवर सिंह अनेकों विज्ञ आलोचकों ने हिंदी आलोचना को समृद्धता प्रदान की। इस समृद्धता में नित होते क्षय ने पुनः 'आलोचना का संकट' खड़ा कर दिया है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जिस आलोचना के कारण बड़े–बड़े रचनाकार संकट में आ जाते थे, हैं। आज हिंदी साहित्य की वही विधा 'आलोचना' के संकट के दौर से गुजर रही है।

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है और आलोचना को साहित्य का दर्पण। समाज में हो रहे नैतिक मूल्यों का ह्रास साहित्य में दिख रहा है, और साहित्यिक मूल्यों में आ रही गिरावट 'आलोचना' में दृष्टिगत हो रही है। हिंदी साहित्य से 'आलोचना के संकट' को दूर करने के लिए पुनः आचार्य शुक्ल जैसे मनस्वी या मनस्वियों की आवश्यकता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ऐसे आलोचकों की

आवश्यकता है, जिनमें सहृदयता, निष्पक्षता, सहज–प्रतिभा, विस्तृत ज्ञान और अभिव्यंजना–कौशल जैसे गुण विद्यमान हों। उनकी आलोचना में कृति के गुण–दोषों के उद्‌घाटन के साथ कृति का मूल्यांकन कर कृतिकार के उद्देश्य को स्पष्ट किया जाना आवश्यक है।

आलोचना का यह संकट तभी दूर होगा, जब रचनाकार प्राचीन और नवीन ज्ञान के समन्वय को स्वीकार कर निष्पक्ष भाव से सृजन करे और आलोचक उसी भावभूमि पर जाकर कृति की आलोचना करे. विष्णु प्रभाकर जी के शब्दों में– *'आलोचक को किसी रचना की आलोचना करते समय उस भाव–भूमि पर पहुंचना अनिवार्य है, जिस भाव–भूमि में उस रचना का सृजन हुआ हो।'* जिस तरह रात के बाद दिन आता है, उसी तरह आलोचना के संकट के उपरान्त आलोचना के नए कीर्तिमान स्थापित होंगे, इस बारे में आशान्वित भी हूँ और आश्वस्त भी। दुष्यंत कुमार की इन पंक्तियों के साथ अपनी बात समाप्त करूंगा–

'वे मुतमईन हैं कि पत्थर पिघल नहीं सकता,
मैं बेकरार हूँ, आवाज में असर के लिए।'

-डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री
सहायक प्रोफेसर (हिंदी),
सामाजिक विज्ञान एवं भाषा संकाय
लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय
फगवाड़ा (पंजाब) 144411

कहानी

बिरधा आसरम

डॉ. विकास कुमार

डमर महतो!... सिमरिया प्रखण्ड के हेवई गाँव का एक लाचार वृद्ध, जिसका शरीर लगभग जबाव दे चुका है। पाँच वर्ष पूर्व ही वह अपनी जीवन संगिनी सुगिया देवी को खो चुका है। चार बेटों और एक बेटी के साथ दस–दस पोते और पोतियों वाला वह सत्तर वर्षीय वृद्ध, जो अब जैसे निःसंतान सा हो चुका है।

हजारीबाग वृद्धाश्रम के मुख्य द्वारा पर असहाय से खड़े डमर महतो की बुढ़ायी आँखों से अश्रु की बूंदें रह–रहकर टपक रही थीं। अभी–अभी उसके संझले लड़के ने अपने पिता से नाता–रिश्ता तोड़कर उन्हें वृद्धाश्रम में यह कहकर छोड़ आया था; 'बाबू जी!... अब आप यहीं रहेंगे। आपके जैसे कई लोग हैं, यहां। यहां कोई चीज की कमी नहीं होगी। सरकार ने आप जैसे लोगों के लिए सब व्यवस्था कर रखी है।... वैसे आ–जाकर हम भी आपको देखते ही रहेंगे।

कलप उठा था डमर महतो का अंतस; वह हाथ जोड़कर अपने बेटे से विनती करता रहा कि छोड़कर मत जाओ यहां हमको, हम घुट–घुटकर मर जायेंगे, बेटा!... पर उसकी एक न सुनी थी और मुड़कर शीध्रता से वह उनकी नजरों से ओझल हो गया था।... डमर महतो वृद्धाश्रम के दरवाजे पर से अपने अश्रुपूरित नजरों से देखता ही रह गया था।

क्या–क्या नहीं किया थे उसने, अपने बेटों और बेटियों के लिए। उनकी परवरिश में कोई कमी नहीं हो, इसके लिए अपनी खेती के अलावे चार–चार किसानों की खेती को भी साझा किया करता था,

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

ताकि माँ–बाप और पत्नी के अलावे इन पांचों बच्चों को अच्छा रहना–खाना मिल सके, अच्छा कपड़ा मिल सके और अच्छी पढ़ाई हो सके।

पत्नी सुगिया देवी भी कम समझदार पत्नी नहीं थी; बल्कि वह भी डमर महतो के काम में बराबर की साझीदार होती थी।... और इसी खेती और गृहस्थी की बदौलत उनके चारों लड़के और एक लड़की पले बढ़े भी थे। अपने गाँव में ही उच्च विद्यालय तक की शिक्षा दिलवाकर डमर महतो ने पाँचों को हजारीबाग के संत कोलम्बा महाविद्यालय में दाखिला करवा दिया था। इस तर्क के साथ कि वह तो खुद ही एक अक्षर नहीं जानता था, गाँव–घर में पढ़े–लिखें लोगों के बीच उसकी काफी फजीहत होती थी, लोगों के बीच मजाक का पात्र बन जाता था, लेकिन उसने अपने बेटों को निरक्षर नहीं रहने दिया था। बल्कि खुद ही आधा पेट रहकर बच्चों की हर ख्वाहिशों की पूर्ति में लगा हुआ था।

बच्चे काबिल निकले भी। बड़े लड़के ने एस०एस०सी० की परीक्षा पासकर कलकत्ते में कलर्की की नौकरी पकड़ ली थी। मंझला लड़का भी राँची कोऑपरेटिव बैंक में मैनेजरी के पद को प्राप्त कर लिया, छोटा लड़का रेलवे में टी०टी०आई०ई० की नौकरी कर लिया था और ज्यादातर धनबाद से गया जाने वाली ट्रेनों में अपनी ड्यूटी निभाता था।... और संझला लड़का ने, जो ग्रेजुएट की डिग्री जरूर प्राप्त कर ली था, लेकिन अपने अंदर बपौती घर–गृहस्थी को ही सजाने का हुनर विकसित कर लिया था और खेती भी आधुनिक तकनीकों के जरिये करने में लगा था। उन्नत और हाइब्रीड बीजों के उपयोग कर वह अच्छा पैसा कमा रहा था।

मनोविज्ञान विषय के विद्वान डॉ. विकास कुमार कहानी विधा में सिद्धहस्त हस्ताक्षर हैं।

संपर्क : अमगावाँ, शिला,
सिमरिया, चतरा,
झारखण्ड – 825401
मो. : 8102596563
ईमेल : vikash346@gmail.com

डमर महतो और सुगिया देवी की तो जैसे खुशी का ठिकाना ही नहीं था। चारो लड़कों ने जो अपनी–अपनी जगह पकड़ ली थी। लड़की भी बी०ए० पास हो गयीं, जिसका विवाह भी लावालौंग प्रखण्ड में काम करने वाले एक पंचायत सेवक से कर दिये थे। पाँचों की खुशी को देखकर डमर महतो और सुगिया देवी को काफी सुकून मिलता था। गाँव–घर में भी उनकी इज्जत काफी बढ़ गयी थी।

वे दोनों आपस में बात भी करते थे कि चारों लड़के उनके चार कंधे हैं, जो हंसी–खुशी उनको अपने कंधों में बैठाकर बैकुंठ धाम की यात्रा करायेंगे।

पर समय को कौन जान सकता है। हुआ ठीक उल्टा ही। समय बदलने के साथ ही साथ बेटों ने भी आँखें बदल ली थी। उनके अंदर शहर की कुत्सित सोच घर कर गयी थी। तीनों नौकरीशुदा लड़कों को शहरी लड़कियों ने अपने प्रेमपाश में बांधकर शादी रचा लिये थे। ...धीरे–धीरे वे अपनी–अपनी पत्नी के गिरफ्त में आकर अपने बीते जीवन को भूलने लग गये थे। संझला लड़का, चूंकि गांव में ही रह गया था, इसलिए अपने माँ–बाप की मर्जी से ब्याह रचाया था। पर किस्मत को कौन जानता है, वह निकली एकदम से लड़ाकिन ही, बात–बात पर वह अपने पति के साथ–साथ डमर महतो और सुगिया देवी को भी कोसती रहती 'तीनों को पढ़ा–लिखाकर शहर में नौकरी लगवा दिये, हमरे भतार (पति) के लिए क्या किये?... हमरा किस्मते फूटल था, जो ई गंवार से शादी हुआ।'

हालांकि डमर महतो ने अपने संझले लड़के को भी कोलम्बा कॉलेज में पढ़वाया था, पर उसका दिमाग तो खेती–किसानी में ही लगा था, तो क्या कर सकता वो। किसी की किस्मत को नहीं लिख सकता था न, इसलिए सुनकर रह जाता था।

...उधर तीनों लड़के माँ–बाप की सुधि लिये बगैर अपनी पत्नी के संग हंसी–खुशी जीवन गुजर–बसर कर रहे थे। उनका मानना था कि उनका संझला भाई जब अकेले ही बाबूजी की खेती संभाल रहा है, तो वही उनकी परवरिश करे। हमें क्या?... हम तो उससे अपना हिस्सा भी मांगने नहीं जाते हैं, तो क्या वह माँ–बाप को दो वक्त की रोटी नहीं खिला सकता।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

आये दिन संझले बेटे की पत्नी कोसती रहती, 'हम ठीका लेकर बैठे हैं, जो अकेले ही दोनों को खाना ठुंसाते रहें। जाइये!... नोकरियाहों के यहाँ जाकर कुछ दिन रह के आइये।'

पर डमर महतो को शहर वाले भी कहाँ पूछने वाले थे। वे तो अपनी बीबी और बच्चों में मगन थे।... और फिर उन्होंने कभी शहरी जीवन भी तो नहीं जिया था। जिसका जीवन खेत–खलिहानों में बीता हो, हरे–भरे, हंसते–गाते माहौल में बिता हो, वे भला शहरों के बंद कमरों में जेल सा जीवन कैसे बिता सकते हैं।... और लड़के पूछें भी तब न, वे भी कभी उस जीवन का मजा लेकर आयें।

हालांकि एकबार संझली बहू की बोली से तंग आकर इन्होंने तो शहर की ओर तीनों बेटों के यहां रूख भी किया था, पर बेटों और बहुओं की बदतमीजी से तंग आकर वापस गाँव आ गये थे। ...यह सोचकर कि अब चाहे जो भी हो। संझली बहू खाने दे या न दे, मारे या गरियाये, लेकिन रहेंगे तो गांव में ही। ...और इसके अलावे गाँव में काफी लोग तो हैं, उनकी सुधि लेने वाले। संझली बहू खाना न देगी तो न दें, वे दोनों प्राणी खुद ही खाना बनाकर खा लेगें।

शहर से लौटने के बाद से तो संझला लड़का और संझली बहू के तेवर और ही तल्ख हो गये थे और खाना–पीना पर लगाम लगाना शुरू कर दिया था। तंग आकर सुगनी देवी ने अपना 'हंडिया–चौरी' खुद ही संभाल लिया था, यह कहकर कि अपने जमाने में चार बेटों और बेटियों समेत नौ लोगों को खुद अकेले खाना बनाकर खिला सकती थी, और खेती–गृहस्थी संभाल सकती थी, तो क्या अब वह अपने और अपने पति का खाना नहीं बना सकती।

संझली बहू यह सब देखकर खुश ही हुई थी कि चलो बला टली, इनको खाना खिलाने के झंझट से आजादी तो मिली। पर यह सब कब तक चल सकता था ? समय के साथ हाथ–पाँव जबाव देने लगे थे। एक रात सुगिया देवी जो सोई, सो सोई ही रह गयी थी। वह अपने पति डमर महतो को अकेला छोड़कर स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर गयी थी।

संझले लड़के ने माता की मौत की खबर तीनों भाइयों और बहन के यहाँ भेजवा दी थी। मगर एक भी कंधा देने नहीं पहुंचे थे, अपने माँ की अर्थी को। बेटी भी दिल्ली गयी थी, सो आने में दो दिन

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

लग ही जाने थे। गाँव के आस–पड़ोस की मदद से संझले लड़के ने श्मशान घाट तक पहुंचाया था और डमर महतो ने अपने ही हाथों मुखाग्नि दी थी। किसी तरह खरी खोटी सुनाकर ही सही, संझला लड़का और संझली बहू ने ही क्रियाकर्म करवाया था। डमर महतो को काफी ठेस पहुंची थी कि क्या सोचकर वे अपने बच्चों को पढ़ाया–लिखाया था और वे क्या निकले। ...अब तो पत्नी का भी सहारा खत्म हो गया था। ...पर क्या करे वह लाचार बूढ़ा, सिवाय मृत्यु की भीख मांगने के।

तीनों लड़कों ने तो मुंह मोड़ ही लिया था, बेटी और दामाद ने भी खोज–खबर लेना बंद ही कर दिया था। क्रियाकर्म और भोज–भात में तो काफी खर्च पड़े थे, जिससे संझली बहू काफी झुंझवा गयी थी और एक दिन खिसिया कर बोल ही दी थी, अब हमसे नहीं होगा, तुम्हारे बाप की सेवा सुश्रुषा। ...या तो तुम्हारे बाप घर में रहेंगे या फिर मैं ही। ... कान खोल कर सुन लो, ...नहीं तो हमीं जहर खा जायेंगे, बोल देते हैं।'

पत्नी के तेवर को भांपते हुए उसने अपने वृद्ध पिताजी को वृद्धाश्रम में छोड़ना ही उचित समझा था। ...फिर समय की नजाकत को समझते हुए वह अपने पिता डमर महतो को वृद्धाश्रम छोड़ आया था। बेटे के सामने हाथ जोड़कर लाख विनती करता रहा डमर महतो कि बेटा, तुम भी मुझे अपने से दूर नहीं करो। जो दोगे, वही रूखा–सूखा खाकर जिंदगी जी लेंगे। लेकिन अब कुछ मांगेंगे नहीं। बाहर ही खटिया बिछा देना, वहीं पड़े रहेंगे। ...बेटा, हम यहां मरना नहीं चाहते हैं। ...मरेंगे भी तो अपने ही घर में। ...यहाँ मेरा दम घुट कर रह जायेगा बेटा!'

पर कहाँ सुनने वाला था उनका बेदर्द बेटा। वह उसे वहीं छोड़कर अपने गाँव की ओर रूख कर लिया था, अपनी बीबी के संग बाकी की जिंदगी का आनंद उठाने के लिए।

डमर महतो अपने बेटे के इस तरह छोड़ जाने से काफी मर्माहत हुआ था। उसकी बुढ़ायी आँखों से अश्रु की बूंदें बारिस की तरह झरझर कर गिर रही थीं। वह वृद्धाश्रम की सीढ़ियों पर बैठकर अंदर ही अंदर कलप रहा था। तभी एक कोमल स्पर्श ने उसकी तंद्रा को तोड़ दिया था। सर उठाया तो देखा कि एक वृद्धा, जो लगभग उसी की उम्र की थी, ने उसके कंधे पर हाथ रखकर दिलाशा देने के

अंदाज में बोल रही थी, 'रोने से कोई फायदा नहीं है, ...आजकल तो यही दौर चला है। बेटों–बेटियों को पाल–पोसकर बड़ा करो और जब हमारी बारी आती है तो वे हमें ही 'बिरधा आसरम' में छोड़कर चल देते हैं। ...यहाँ पर आपके जैसे कई लोग हैं। चलिये अंदर कोई कष्ट नहीं होगा।'

डमर महतो को लगा जैसे उस बूढ़ी औरत के रूप में सुगिया देवी ही सीधे स्वर्ग से उतर आयी है, उसकी दूसरी पत्नी के रूप में, जो उसके हाथों को पकड़कर अंदर ले जा रही है।

दोपहर का समय था। सभी बूढ़े–बुजुर्ग जमीन पर बिछी हुई कालीन पर बैठे, बड़े ही मजे से भोजन कर रहे थे। अपने परिवार में नवीन सदस्य को देखते ही भोजन करने हेतु कालीन में ही स्थान देने लगे थे। डमर महतो को काफी अच्छा लगा था, यह सब देखकर। वर्षों बाद इस तरह की आत्मीयता का दर्शन हुआ था उसे। बिना किसी मलाल के डमर महतो ने डटकर भोजन किया उन लोगों के साथ।

फिर थोड़ा आराम करने के लिए वे लोग उन्हें बिस्तर पर भी ले गये थे। फिर मेल–मिलाप का दौर शुरू हो गया था। डमर महतो कुछ ही समय में अच्छे से घुल मिल गया था सभी से।

रात्रि प्रहर, भोजनोपरांत सोते समय अपने बगल वाले वृद्ध सोमर साव से काफी घनिष्ठता हो गयी थी। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा, 'डमर महतो! यहाँ ऐसा ही चलते रहता है। सुबह, शाम और दोपहर का खाना एकदम टैम से मिल जाता है और दो टैम चाय–बिस्कुट भी।'

'...अच्छा! ...लेकिन फिर इसका कोई पैसा भी लगता है का?' डमर महतो आश्चर्यचकित हो पूछ बैठे थे।

'नहीं! ...सब सरकारी है। ...यहाँ खाली खाना खाना है और मजे से रहना है।' सोमर साव मुस्कुराते हुए बोल उठे थे।

'आपको मन लगता है, यहाँ, बिना बेटा और बेटी का मुंह देखे ?' थोड़ी मायुसी के साथ पूछ बैठे थे डमर महतो।

'अरे छोड़िये इ सब डमर महतो। ...बेटा और बेटी का मुंह देखकर का कीजिएगा। ...अब सबकुछ भुला जाइये और जिंदगी का मजा लीजिए। ...जब उ लोग हमारे बिना मजा से रह सकता है, तो हम लोग काहे नहीं रह सकते हैं। ...अच्छा अब निश्‍ंचित होकर चादर

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

ओढ़कर सो जाइए। कल सुबह उठना है, पाँच बजे। झील किनारे सुबह–सुबह भजन–कीर्तन भी चलता है, आपको भी ले चलेंगे। बड़ा मजा आयेगा वहाँ।' यह कहकर सोमर साव सोने का उपक्रम करने लगे थे।

डमर महतो को भी अहसास हुआ कि सोमर साव ठीक ही कहता है। ...आखिर क्यों, हम उनके प्रति मोह–माया रखें, जो बुढ़ापे का सहारा ही नहीं बन पाये ? काहे का बेटा और बेटी। ...जाय भाड़ सब!' ... फिर चादर तानकर निश्चित से सो गये थे।

डमर महतो यहाँ की व्यवस्था को देखकर दंग रह गया था। जिस परिवार की तलाश में वह अब तक भटक रहा था, ...वह अब नसीब हुआ था। यहाँ सभी अपने न होकर भी अपने हो गये थे और जो अपने थे, वे पराये हो गये थे। ...इतना प्रेम भाईचारा, मेल–मिलाप शायद उसे अब तक नसीब नहीं हो पाया था।

डमर महतो को लगा कि अब उसे एक नया जीवन मिल गया है, जहाँ उसके सभी अपने हैं। ...अब वह यहाँ हंसी–खुशी अपने अंतिम दिनों को बिता सकता है। ...अब तक तो वह झूठ–मूठ के ही अपने बेटों और बेटी की आशा कर रहा था। ... अगर उसे पहले से यह पता होता कि सरकार ने बूढ़े–बुजुर्गों के लिए वृद्धाश्रम खोल रखा है, जहाँ खाने–पीने, रहने–सोने की सारी सुविधायें उपलब्ध हैं, तो वह क्यों अपने बेटों और बहुओं की प्रताड़ना को सहता। खुद ही यहाँ चला आता।

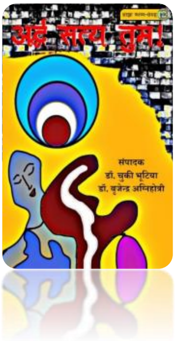
अर्द्ध सत्य तुम!
डॉ. चुकी भूटिया (सं.)
आईएसबीएन : 978-81-946859-4-4
संस्करण : 2021, मूल्य : 225/-

उसे वहाँ का जीवन रास आने लगा था। मन प्रसन्न रहने लगा था। अपने हमउम्र लोगों के बीच हंसी–ठिठोली भरे जीवन से बचपन का पुनरागमन हो गया था। उसने मन ही मन भगवान को धन्यवाद दिया कि, वो जो भी करते हैं, ठीक ही करते हैं।

कहानी

औलादों वाली मां

श्यामल बिहारी महतो

आज फिर उनकी उपस्थिति पर उसने आपत्ति जताई थी– 'ये यहां भी पहुंच गया है। आखिर यह है किस मर्ज की दवा...?'

उस वक्त मैंने उससे विशेष कुछ नहीं कह कर–केवल इतना ही कहा था– 'उनके बारे में जानोगे तो तेरे पांव तले की जमीन खिसक जायेगी, फिर भी बताऊंगा,पर कार्यक्रम के बाद–रूकना कहीं जाना नहीं..।'

यह एक प्रखंड स्तरीय सालाना विचार गोष्ठी थी विषय था– 'सामाजिक संवेदना का क्षरण'। इसमें क्षेत्र के तमाम बुद्धिजीवी आमंत्रित थे। उन्हीं में संजय बाबू भी बतौर अतिथि शामिल थे। रणधीर और संजय बाबू एक ही गांव से थे। लेकिन लगता दोनों दो अजनबी हैं। रणधीर की बातों से लगता दोनों के बीच एक खाई है जो काफी गहरी है। रिश्ते में चाचा–भतीजा थे, पर रणधीर में भतीजा वाली फिलिंग्स नदारद थी। उल्टे संजय बाबू के नाम से ही वह लहर उठता था– शायद मन में कोई खुंदक रही हो लेकिन रणधीर के प्रति संजय बाबू के मुंह से कभी कोई अनुचित शब्द आज तक मैंने नहीं सुना था। जब भी वह इसके बारे कुछ कहते– रणधीर बाबू ही मुंह से निकलते सुना। वहीं रणधीर संजय बाबू को लेकर बार बार आपत्ति जताता रहा है, कई बार इसकी वजह जानना चाहा पर कारण कभी बताया नहीं उसने।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

उस दिन करम महोत्सव में उन्हें मंचासीन देख वह एकदम से असहज हो उठा था। विफरते हुए कहने लगा– 'अरे भाई यह आदमी अपने किस महान कार्य की वजह से मंच पर विराजमान है! मैं तो अपने न्यूज में इसका नाम तक न लिखूंगा। क्यों लिखूं भला ? यह कोई सेलीब्रिटी है, कोई राजनेता है या...!'

'यह एक बुद्धिजीवी है.. लेखक है!' समझाने की लहजे में उनसे कहा था।

'क्या कहा...? लेखक और ये..? भांग खाये हो क्या तुम..?'

उसका यह कहना मुझे बहुत बुरा लगा। रणधीर लगातार संजय बाबू का अपमान ही नहीं तिरस्कार भी किये जा रहा था। जी चाहा उसे फटकार लगा दूं फिर सोचा– चलो इसी बहाने इसके अंदर का गुबार और गंदगी को बाहर आने देते है। उसका बकना बंद नहीं हुआ था– 'अगर इसके जैसा आदमी लेखक होने लगे तो गली–मोहल्लों में कुकुरमुत्तो की शक्ल में लेखक मिलने लगेगें..! अरे ये जो रोज चार बजे भोर गाय–बैलों को चराने जंगल ले जाता हो, बकरियों के लिए हर दिन माथे पर पाल्हा ढोकर लाता हो, सावन में जो खुद हार जोतता हो . . और बाकी समय आफिस जाकर कलम घिसता हो फिर यह लिखता कब है ? वाल्मीकि की तरह कौन सी ग्रन्थ लिख दिया इसने, जो

श्यामल बिहारी महतो

तारमी कोलियरी सीसीएल में कार्मिक विभाग में वरीय लिपिक स्पेशल ग्रेड पद पर कार्यरत और मजदूर यूनियन में सक्रिय श्यामल बिहारी महतो भावप्रवण कथा–साहित्य के प्रणयन और सशक्त व्यंग लेखन के लिए जाने जाते हैं।

संपर्क : मुंगो, बोकारो, झारखंड
मो. : 6204131994
ईमेल : shyamalwriter@gmail.com

तुम लोगों ने इसे मंच प्रदान कर दिया है...? लेखक कह कह कर इसे सर पे बिठा लिया है....!'

'एक नहीं दो नहीं बल्कि चार किताबें लिख चुके हैं इन्होंने... .!'

'क्या कहा चार–चार किताबें .. किसी की चोरी ही की होगी इसने...!'

'हां हां चार किताबें– पांचवीं प्रेस में छप रही है!' मैंने रणधीर को अधीर कर देना चाहा था– 'तुम अखबार में लिखते हो, छपता है पर कितने लोग अखबार पढ़ते हैं, और कितने लोग तुमको जानते हैं गांव और थाने तक! ? ये देश–परदेश की पत्रिकाओं में लिखते हैं–छपते है, पूरे देश–परदेश के पाठक इनको जानते हैं.. और सुनो, तुम्हारे बारे में भी इन्होने एक कहानी लिखी है– 'औलादों वाली मां'। कहानी तो मैंने पढ़ी नहीं है परंतु प्लॉट जो सुना था– तुम पर फिट बैठता है। हालांकि कहानी तुम्हारी हो सकती है और नहीं भी हो सकती है या फिर हममें से किसी की भी हो सकती है तो सुनो कहानी– औलाद ही एक दिन औलादों वाली मां को घर से बाहर हो जाने पर मजबूर कर देती है। वो बेटी–दामाद के घर में जाकर शरण लेती है। पति की मृत्यु उपरांत अनुकंपा के आधार पर नौकरी मिली थी रीता देवी को, तब दोनों बेटों की उम्र आठ और दस साल की थी। अभी उसका दामाद ही उसके लिए बैसाखी बना हुआ था। वही हर दिन सुबह उसे काम पर ले जाता है और दोपहर को ले आता है। और उसके दोनों बेटे मौज कर रहे थे। पर देखो उस मां की ममता को, हर माह दोनों बेटों को दस–दस हजार रुपए गुजारे के रूप में देती चली आ रही थी। जीवन में कभी ऐसे दिन भी देखने को मिलेगा रीता देवी ने कभी सपने में भी नहीं सोचा था। जो औरत कहीं मर–मेहमानी में घर के दरवाजे के बाहर कदम रखने के पहले बेटा पुतोहू से यह पूछा करती थी कि घर में कार्ड–निमंत्रण आया था या नहीं– वही औरत बेटी–दामाद के घर में रहकर काम करने जाने के लिए खुद को कैसे तैयार की होगी, रीता देवी से बेहतर कोई कह नहीं सकता था। उस दिन को वह मरते दम तक भूल नहीं सकती। शाम को घर में काम को लेकर दोनों बेटों में झगड़ा हो गया। बड़े

बेटे का कहना था कि छोटका घर का काम नहीं करता है और दिन भर पत्रकार बना फिरता है, वहीं छोटका का आरोप था कि दादा घर का काम छोड़ दिन भर मोदीआइन औरतों के पीछे पड़ा रहता है। बात इतनी बढ़ी कि रात को किसी ने खाना नहीं खाया। सुबह तो सब में शनि सवार हो गया। मां के लिए खाना नहीं बना तो नहीं बना। अभी तक सुबह खाना छोटकी पुतोहू बनाती थी और मां को काम पर छोड़ने बड़ा बेटा जाता था। उस दिन बड़ा बेटा अड़ गया, बोला– 'काम पर जाओ चाहे न जाओ, अब यह काम हमसे नहीं होगा।'

'चपरी में चोरी हो गयी है, रिपोर्ट लेने मुझे वहां जाना है। और यह लाने–ले जाने वाला काम मुझसे नहीं होगा ..!' कह वह भी घर से निकल गया।

रीता देवी कपार पकड़कर आंगन में ही बैठ गई थी। जब याद आया उसे कि काम पर जाना है, तो चप्पल पहने और वह भी बिना खाये पिये चल दी। कोलियरी घर से पांच किलोमीटर दूर। भारी शरीर। चलते–चलते आधे रास्ते में दम फूलने लगा। बैठी फिर चली, फिर बैठी फिर चली। इस तरह हाजरी घर आधा घंटा लेट पहुंची। हालांकि हाजरी तो हाजरी बाबू ने बना दी, पर चार बातें भी सुना दी– 'आज बना दी हमने, रोज–रोज ऐसा नहीं होगा...!'

लौटने के वक्त गांव के एक देवर ने बिठा लिया तो मरने से बची। घर में तनाव कम नहीं हुआ। दोनों बेटे अपने मन की करते रहे। दो दिन काम नागा चला गया। उसे क्रोध और चिंता दोनों हो रही थी, पर बेटे सुनने–मानने को तैयार नहीं। बेटी दामाद को बुलाया, पर कोई लाभ नहीं। न पत्रकार आगे आने को तैयार न बड़का मानने को राजी।

'चलिए, हमारे यहां रहिए। देखता हूं कैसे रास्ता निकलता है।' दामाद ने कहा।

भारी मन से रीता बेटी दामाद के साथ चली गई थी। तब से वहीं थी..!

फाइलेरिया रोग से पीड़ित रीता देवी के साथ जो कुछ हो रहा था और जिस तरह की जिंदगी वह गुजार रही थी, दो–दो बेटों

की मां के लिए बड़ी पीड़ादायक थी। फाइलेरिया रोग ने दोनों पैर और छाती को काफी क्षति पहुंचाई थी। पैर हाथी जैसे मोटे और छाती कोहंडे के समान हो चुके थे फिर भी वो उफ न करके काम पर आ जा रही थी। दो–दो बेटे क्या इसी दिन को देखने के लिए पाल पोसकर बड़ी की थी उसने कभी सोचा करती, परन्तु कहती किसी से नहीं। फिर भी दस–दस हजार रुपए गुजारे के लिए दे रही थी, यह सोच कर कि जो काम उसके लिए बेटी दामाद कर रहे हैं वो दिन आवे जब ये काम उसके लिए बेटा पुतोहू करें। पर कपार फूटा है उसकी जो उसका दुख बेटों को दिख नहीं रहा था। उल्टे मां बहुत–कुछ देख सुन रही थी। सहारा तो बेटों को बनना चाहिए था मां का। लेकिन मां ही सहारा बनी हुई थी बेटों का। कहानी यहीं खत्म नहीं होती है। बड़ा बेटा जो अब तक एक नंबर का जुआरी–शराबी और अय्यास बन चुका था, मां के दिये उसी दस हजार से गांव की आठ–दस औरतों के साथ अवैध संबंध बना रखा था। इससे रीता देवी का मन आहत था। और किसी अज्ञात भय से डर भी रही थी। इतना दुख तो घर छोड़ने के समय भी नहीं हुआ था। इस तरह अवैध संबंधों का अंत को भला उससे बेहतर कौन जान सकता है। पति जब नौकरी में था। तो इसी तरह एक बंगालन लड़की के चक्कर में पड़ गया था। वो समझ रहा था लड़की उससे प्यार करती है पर उसे यह नहीं पता था कि उस जैसे दो–चार और के साथ लड़की का चक्कर है। सीधा–सीधा देह और दाम का खेल था। जब जाना तो जान से हाथ धोना पड़ा। एक दिन कोलियरी चेक पोस्ट के नजदीक नाले में बोरी में बंद मिली थी लाश उसकी। तब तक चार बच्चे रीता देवी की गोद में डाल चुका था उसने। और तभी से रीता देवी जीवन के साथ संघर्षरत थी। उसी का एक बेटा गांव में खुद को पत्रकार कहते–जतलाते फिरता था और उसे पता नहीं था कि खुद उसकी मां एक समाचार बन चुकी है...!'

संजय बाबू को एक जगह और कहीं जाना था। संचालनकर्ता ने दो के बाद ही उन्हें अपना विचार रखने के लिए आमंत्रित किया तो उन दोनों का ध्यान भंग हुआ। रणधीर उठकर वहां से चल दिया था।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

'आज का जीवन बड़ा कठिन हो गया है!' —संबोधन के बाद संजय बाबू ने कहना शुरू किया— 'जीवन की भागदौड़ में मनुष्य को यह पता नहीं चल रहा है कि कौन कहां पीछे छूट गया और कौन उससे आगे निकल गया। सब इसी आपा धापी में लगा हुआ है। लोग जीने से अधिक दिखावे के मुरीद होते जा रहे हैं। इसके लिए भी उन्हें हर पल संघर्ष करना पड़ रहा है। ऐसे में मीडिया वाले पत्रकार और लेखकों का जिम्मेवारी काफी बढ़ जाती है। एक ओर जहां पत्रकार समाज का आईना होता है, वहीं लेखक समाज के लिए दगरीन का काम करता है। अगर पत्रकार बुराई के खिलाफ नहीं लड़ता—लिखता है और जिसमें उसका ही बदरंग चेहरा नजर नहीं आता है तो उस आईने को तोड देना चाहिए और हल थाम लेना चाहिए ताकि जीवन दर्शन को समझ सके। ठीक उसी प्रकार अगर लेखक की लेखनी में वो धार नहीं है जिसके दम पर कभी कई देशों में राज्य क्रांतियां हो चुकी है तो उसे लिखना छोड़ किसी कारखाने का मिल मजदूर बन जाना चाहिए। जहां लालच का वास, वहां सब बकवास.. धन्यवाद.!'

अर्जेंट कॉल का बहाना कर रणधीर आधा घंटा पहले जो निकला था अभी तक सभा स्थल में लौटकर नहीं आया था। लगा खुद की कहानी की बात सुन वह डर गया था। कहावत है चोर का चेहरा हमेशा डरा डरा रहता है। निर्भय की हंसी वह कभी हंस नहीं सकता है। वही हाल रणधीर का था।

सभा समाप्त हो चुकी थी। अतिथि जा चुके थे। मैं अब भी रणधीर का इंतजार कर रहा था। उसे यह बताना चाह रहा था कि औलादों वाली मां केवल तुम्हारी ही मां नहीं है ...पर लौटकर आवे तब न!

रणधीर लौटकर तो नहीं आया। उसकी जगह एक सनसनी खेज खबर आई। सुनकर ही मेरे शरीर के रोंगटे खड़े हो गए थे— रणधीर की मां रीता देवी ने आत्महत्या की या हत्या कर दी गई! उसके गांव में हल्ला मचा हुआ था।

पुलिस पहुंच चुकी थी। जांच पड़ताल जारी थी ।

'मैं तो कहती हूं मां को यहीं ले आओ, और नौकरी देने के लिए राजी कर लो!'

'आजकल बदली में नौकरी मिलती कहां है?'

'सुनते हैं मरने के बाद नौकरी मिल जाती है!'

कुछ दिन पहले रीता देवी को उसका बड़ा बेटा खिरू यह कहते हुए ले आया था कि– 'मां माफ करो, जो हुआ सो हुआ अब घर चलो, गांव में बड़ी बदनामी हो रही है। घर से ही काम पर आना–जाना करना। अब हम तुम्हें कोई तकलीफ होने नहीं देंगे!'

उसके ठीक साप्ताह दिन बाद खिरू चुपके से आफिस हो आया था। मां ने कहा है बोल के आफिस के बड़ा बाबू से सर्विस सीट में किसका–किसका नाम दर्ज है, देख आया था। और आज वही मां पइन झांका रस्सी से घर के पिछवाड़े लटकी मिली थी।

मां की हत्या के आरोप में शाम को पुलिस ने खिरू को गिरफ्तार कर लिया!

विकास का आधार मानवाधिकार

डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

आईएसबीएन : 978-93-90548-82-8

संस्करण : 2020, मूल्य : 225/-

कहानी

बदरंग जिंदगी

महेश कुमार केशरी

दामोदर को एहसास हुआ कि उसे फिर से पेशाब लग गई है। पता नहीं उसका गुर्दा खराब हो गया है, या शायद कोई और बात है। अब, बिना डॉक्टर को दिखाये उसे कैसे पता चलेगा कि उसको बार–बार पेशाब क्यों आता है ? ऐसा नहीं है कि उसने डॉक्टर को नहीं दिखाया। उसने कई–कई डॉक्टरों को दिखाया, लेकिन, समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है। उसे लगातार पेशाब आना बंद ही नहीं होता है। वो आखिर करे भी तो क्या करे ? अब उसका डॉक्टरों पर से जैसे विश्वास ही उठ गया है। उसे लगता है कि उसके मर्ज की दवा शायद अब किसी भी डॉक्टर के पास नहीं है। कभी–कभी उसे ऐसा भी लगता है कि वो एक ऐसे जंगल में पहुँच गया जहाँ से उसे बाहर निकलने का रास्ता ही नहीं सूझ रहा है, और, वो उसी जंगल में आजीवन भटकता रहकर कहीं मर–खप जायेगा। उसे अपने जीवन में सब कुछ अच्छा लगता है, लेकिन, उसे अच्छा नहीं लगता कि उसे बार–बार पेशाब आये। ज्यादा पेशाब आने से उसे बार–बार पेशाब करने काम को छोड़कर जाना पड़ता है। उसके मालिक, यानि कारखाने के मालिक, उसकी इस हरकत पर बड़ी बारीक नजर रखे हुए रहते हैं, और वो तब मन–ही मन भीतर से कटकर रह जाता है जब मालिक उसे टेढ़ी नजर से देखते हैं, और मन ही मन गुर्राते हैं। और भला गुर्राये भी क्यों ना ? उसे छह हजार रुपये महीने भी तो देते हैं, और वो इधर साल भर से काम भी तो ठीक से नहीं कर पा रहा है।

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

उसको कभी–कभी खुद भी लगता है कि वो काम छोड़ दे, और अपने घर पर ही रहे। तब तक, जब तक की उसकी बार–बार पेशाब करने वाली बीमारी खत्म ना हो जाये, लेकिन अगर वो काम छोड़ देगा तो खायेगा क्या ? बार–बार ये सवाल उसके दिमाग में कौंध जाता है। अमन की उम्र भी भला क्या है ? मात्र उन्नीस साल! इतने कम उम्र में ही उसने पूरे घर की जिम्मेदारी संभाल ली है। ऐसे उम्र में दूसरे बच्चे जब बाप के पैसे पर कहीं किसी कॉलेज में अय्याशी कर रहे होते हैं। उस समय अमन सारे घर को देखने लगा है। आखिर क्या होता है आजकल छः हजार रूपये में ? आज अगर अमन को मिलने वाले पंद्रह हजार रूपये उसको नहीं मिलते तो क्या वो घर चला पाता ? नहीं बिल्कुल नहीं! और अमन हर महीने याद करके उसकी दवा ऑनलाइन खरीदकर भेज देता है। नहीं तो उसकी सैलरी में तो वो अपनी दवा तक नहीं खरीद पाता। आज एक दवा खरीदने जाओ तो, वो दो सौ रूपये की मिलती है, लेकिन अगले महीने जाओ तो कंपनी उसी दवा पर दस–बीस फीसदी रेट बढ़ा देती है, और आजकल डॉक्टर के केबिन के बाहर मरीजों से ज्यादा उसे मेडिकल रिपर्जेंटेटिव वाले लड़के ही दिखाई देते हैं।

महेश कुमार केशरी

स्वभावतः कवि महेश कुमार केशरी की कहानियां अपनी संवेदनशीलता के लिए जानी जाती हैं। इनकी रचनाएं राष्ट्रीय स्तर की ख्यातिलब्ध पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं।

संपर्क : मेघदूत मार्केट फुसरो, बोकारो, झारखंड 829144

मो. : 9031991875

ईमेल : keshrimahesh322@gmail.com

मरीजों को ठेलते–ठालते अंदर घुसने को बेताब दिख पड़ते हैं ये लड़के! जो, थोड़ी बहुत भी नैतिकता डॉक्टरों में बची थी, वो इन कमबख्त दवा कंपनियों ने खत्म कर रखी है। रोज एक दवा कंपनी बाजार में उतर जाती है और, उसके ऊपर दबाव होता है, अपने प्रोडक्ट की मार्केटिंग का। जहाँ चूकते–चूकते आखिरकार डॉक्टर भी हथियार डाल ही देते हैं। रोज एक नया चेहरा वैसे ही एक कृत्रिम मुस्कुराहट ओढ़े हुए उनके केबिन में दाखिल हो जाता है, और ना चाहते हुए भी वो उनकी दवा मरीजों को लिख देते हैं। दवाओं पर मनमाना दाम कंपनी लगाती है और कंपनी के टार्गेट और मुनाफे के बीच फँस जाते हैं उसके जैसे लोग!

उसको लगा वह कुछ देर और रुका तो उसका पेशाब पैंट में ही निकल जायेगा। लोग उसकी इस बीमारी पर बुरा सा मुँह बनाते हैं। खासकर उसके सहकर्मी। और उसने अपनी बहुत देर से दबी हुई इच्छा आखिरकार, दिनेश को बताई। दिनेश उसका साथी है। रोज काम करने बैरकपुर से रघुनाथपुर वो दिनेश की मोटर साइकिल से ही आता–जाता है। उसके पास अपनी मोटरसाइकिल नहीं है। उसका घर, दिनेश के घर के बगल में ही है इसलिए वो उसकी मोटरसाइकिल से ही काम पर आता जाता है।

'दिनेश मैं आता हूँ, पेशाब करके।' इतना कहकर वो निपटने के लिए जाने लगा, लेकिन, तभी दिनेश की बात को सुनकर रुक गया।

दिनेश ने कारखाने से छुट्टी होने के बाद अभी कारखाने का गेट बंद ही किया था कि दामोदर की इस अप्रत्याशित बात को सुनकर झुँझला पड़ा– 'अगर, तुम्हें पेशाब करने जाना ही था, तो कारखाना बंद होने से पहले ही चले जाते। और हाँ, अभी तुम थोड़ी देर पहले भी तो पेशाब करने गये थे। पता नहीं तुमको कितना बार पेशाब लगता है ? एक हमलोग हैं, कारखाना में घुसने के बाद बहुत मुश्किल से दो या ज्यादा से ज्यादा तीन बार जाते होंगे, लेकिन, तुमको तो दिन भर में पचास बार पेशाब लगता है। पता नहीं क्या हो गया है तुम्हें ? किसी अच्छे डॉक्टर को क्यों नहीं दिखाते ?'

दामोदर के चेहरे पर जमाने भर की कातरता उभर आई। उसके सूखे हुए बदरंग चेहरे पर नजर पड़ते ही दिनेश का दिल भी डूबने लगा, और वो उसकी परेशानी को समझते हुए बोला– 'ठीक है जाओ, लेकिन, जरा जल्दी आना। आज मुझे मेरे बेटे को पार्क लेकर जाना है घूमाने के लिए। वो पिछले कई हफ्तों से कह रहा है– पापा, आप कभी मुझे पार्क लेकर नहीं जाते। आज अगर मैं जल्दी नहीं गया तो वो फिर सो जायेगा और कल फिर से वही तमाशा करेगा घूमने जाने के लिए। आखिर इन मालिक लोगों के लिए सुबह नौ बजे से रात को नौ बजे तक काम करते–करते अपने बाल–बच्चों को कहीं घूमाने का समय ही नहीं मिल पाता।'

'हाँ आता हूँ।' कहकर दामोदर जल्दी से पान मसाला की एक पुड़िया फाड़कर अपने मुँह में डालता हुआ पेशाब करने चला गया।

दामोदर, सेठ घनश्याम दास के यहाँ पिछले बीस सालों से काम करता आ रहा। दिनेश अभी नया–नया है। दोनों गाड़ी पर बैठे और अपने गंतव्य की ओर चल पड़े।

बात के छोर को दिनेश ने पकड़ा– 'तुम्हें ये बीमारी कब से हुई है, और तुम इसका इलाज क्यों नहीं करवाते दामोदर ?'

दामोदर बोला– 'अरे भईया इलाज की मत पूछो! पिछले लॉकडाउन में मैं अपनी सोसाइटी के गेट पर खड़ा–खड़ा ही बेहोश होकर गिर पड़ा था। वह तो बगल के एक दुकानदार ने देख लिया, और सोसाइटी के गार्ड की मदद से मुझे मेरठ भिजवाया। सात दिनों तक जैक हास्पिटल में रहा। एक दिन का पंद्रह हजार रुपये चार्ज था वहाँ का। केवल सात दिनों में ही एक लाख रूपये से ज्यादा उड़ गये। फिर मेरे लड़के ने नर्सरी हास्पिटल में मुझे भर्ती कराया। तब जाकर अभी मेरी हालत में कुछ सुधार आया है। अगर वह दुकानदार और गार्ड़ ना होते तो आज मैं तुम्हारे सामने जिंदा ना होता।'

'और सारा खर्चा कहाँ से आया! सेठजी ने कुछ मदद की या नहीं ?' दिनेश बाइक चलाता हुआ बोला।

'अरे, मुझे कहाँ होश था। लड़का बता रहा था उसने मालिक को फोन करके पैसे माँगे थे, लेकिन मालिक की सुई दो हजार पर अटकी हुई थी। बड़ी हील–हुज्जत के बाद उन्होंने पाँच हजार रूपये दिए।'

'बाकी के पैसों का इंतजाम कैसे हुआ ?'

'कुछ अगल–बगल से कर्ज लिया, और बाकी मेरे ससुर जी ने लगभग चार लाख रूपये देकर मेरी मदद की। तब जाकर मेरी जान बची।'

मोटर साइकिल एक मेडिकल स्टोर के बगल से गुजरी। दामोदर ने दिनेश को गाड़ी रोकने के लिए कहा। वह लपकता हुआ मेडिकल स्टोर की तरफ बढ़ गया। उसकी दवा खत्म हो गयी थी। उसने दुकानदार को पर्ची दिखाई दुकानदार ने पर्ची को बड़े गौर से देखा और दवाई निकालकर उसने काउंटर पर रख दिया और दामोदर से बोला– 'इस बार भी कंपनी ने दवा का दाम बढ़ा दिया है।' उसने एम. आर. पी. पर नजर डालते हुए कहा– 'पिछली बार ये दो सौ पचास रुपये की आती थी, अब दो सौ सत्तर रूपये लगेंगे। क्या करूँ, दे दूँ ?'

दामोदर ने जेब में हाथ डाला और पैसे गिने। उसके पास दो सौ रूपये थे। उसी में उसे रास्ते में घर के लिए एक लीटर दूध भी लेना था। पैसा नहीं बचेगा उसने दुकानदार से कहा– 'फिलहाल मुझे दो दिन की दो गोली दे दो। बाकी जब तनख्वाह मिलेगी तब आकर ले जाऊँगा।'

दवा लेकर खुदरा पैसा उसने जेब के हवाले किया और वापस आकर बाइक पर बैठ गया। रास्ते में उसने एक लीटर दूध भी लिया।

घर पहुँचकर उसने हाथ मुँह धोया और पलंग पर लेट गया। तब तक उसकी पत्नी रुचि चाय बनाकर ले आयी। एक प्याली उसने दामोदर को दी और दूसरी प्याली खुद लेकर चाय पीने लगी। चाय पीते–पीते वह बोली– 'आज घर का मकान मालिक आया था और घर का किराया भी माँग रहा था। कह रहा था कि दो महीने का किराया तो पूरा हो ही गया है, और अब तीसरा महीना भी लगने

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

वाला है। आप लोग जल्दी से जल्दी किराया दीजिये नहीं तो घर खाली कर दीजिए।'

'ये हरीश भी अजीब आदमी है। वह जानता है कि अभी कोविड़ का समय है, और ऐसी नाजुक स्थिति है। यहाँ हम लोग दाने–दाने को तरस रहे हैं। एक टाइम माड़–भात तो एक टाइम पानी या शर्बत पीकर ही काम चला रहे हैं। एक तो खाने–पीने वाले राशन की परेशानी। उस पर से हर महीने का किराया। आखिर कहाँ से लाकर दे आदमी इस गाढ़े समय में किराया ? इन ढ़ाई महीनों में वो पहले ही अपने जान पहचान के सभी लोगों से कर्ज ले चुका है। अभी उसने पहले से लिए कर्ज को ही नहीं चुकाया है, तो ये कमरे का किराया कहाँ से लाकर देगा ? उसको भी सोचना चाहिए। दो–ढ़ाई महीने से दुकान बंद है। जब मालिक से पैसा मिलेगा तब उसको किराया भी मिल ही जायेगा। कौन से हम भागे जा रहे हैं ?'

दामोदर को लगा जैसे उसके सीने पर किसी ने बहुत भारी पत्थर रख दिया हो, जिससे उसकी साँस फूलने लगी हो, और अब तब में उसका दम घुट जायेगा। और वह वहीं पलंग पर खत्म हो जायेगा। वह उठकर पलंग पर बैठ गया।

'आज माँ का फोन भी आया था। कह रही थीं कि एक बार में ना सही, लेकिन किस्तों में ही चार लाख रुपये थोड़ा–थोड़ा करके लौटा दें। मेरी छोटी बहन निम्मो की शादी तय हो गयी है। अगले साल कोई अच्छा सा लगन देखकर पिताजी निम्मो की शादी कर देना चाहते हैं। तुमसे सीधे–सीधे कहते नहीं बना तो, उन्होंने माँ से फोन करके कहलवाया है।' रुचि ने डरते–डरते धीरे से कहा।

'ठीक है, उनका भी कर्ज हम लोग चुका देंगे! लेकिन थोड़ा समय चाहिए।' दामोदर छत को घूरते हुए बोला।

रात काफी गहरा चुकी थी। रुचि कब की सो गई थी। दामोदर को नींद नहीं आ रही थी। रह–रह कर वह बदरंग हो चुकी दीवार और छत को घूरता जा रहा था। उसे कभी–कभी ये भी लगता है कि उस दीवार और छत की तरह ही उसकी जिंदगी भी बदरंग हो गई है। एकदम बेकार पपड़ी छोड़ती और सीलन से भरी हुई! क्या पाया आज उसने पचास–पचपन साल की उम्र में ? कुछ भी तो नहीं!

ताउम्र वो खटता रहा, लेकिन उसके हाथ में क्या लगा ? सिवाये शून्य के! एक नपी तौली जिंदगी जो खुशी से ज्यादा उसे दुःख ही देती रही। ज्यादातर वक्त अभाव में ही बीता। अचानक उसे लगा कि उसे फिर से पेशाब लग गयी है, वह उठकर फारिग होने चला गया। आकर वापस लेटा तो रुचि की नींद खुल गई। उबासी लेती हुई रुचि ने पूछा– 'क्या हुआ नींद नहीं आ रही है क्या ?'

'नहीं! लगता है पलंग में खटमल हो गये हैं, और मुझे काट रहे हैं।' दामोदर बिछौना ठीक करता हुआ बोला।

रुचि ने 'अच्छा' कहा और उबासी लेती हुई फिर से सो गई।

उसके बगल वाला कमरा उसकी बेटी प्रीती का है। पापा के आने की आहट पाकर उसने जल्दी से अपने कमरे की बत्ती बंद कर ली। लेकिन दामोदर के दिमाग में एक नई दुश्चिंता ने घर करना शुरू कर दिया। आखिर इस साल प्रीति का पच्चीसवाँ लगने वाला है। आखिर कब तक जवान लड़की को कोई घर में रखेगा। कल को कहीं कुछ ऊँच–नीच हो गई तो! तमाम दुश्चिंताओं के बीच दामोदर रात भर करवटें बदलता रहा, लेकिन उसे नींद नहीं आई!

जुम्बिश

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-946859-3-7

संस्करण : 2020, मूल्य : 250/-

लघुकथा

कहीं देर न हो जाए...

डॉ. पूरन सिंह

उनके हाथों में भाले, त्रिशूल और फरसे थे। वे संख्या में बहुत ज्यादा थे। वे चीख रहे थे और नारे भी लगा रहे थे। 'हर हर महादेव', 'भारत माता की जय', 'जय बजरंग बली'। उनका निशाना कस्बे में रह रहे एक मात्र मुस्लिम परिवार रहमत मियां का घर था। रहमत मियाँ इस परिवार के मुखिया हैं। पक्के नमाजी हैं। धर्म में पूर्ण आस्था और विश्वास है उनका। अपने धर्म का ही नहीं सभी धर्मों का सम्मान करने वाले रहमत मियां के परिवार में उनकी बुजुर्ग अम्मीजान के अलावा एक बेटा, एक बेटी और बेइंतिहां प्यार करने वाली उनकी बेहद सुन्दर पत्नी है।

जब उन्मादित भीड़ रहमत मियां के घर पर पहुँची उस समय रहमत मियां अपने परिवार के साथ बैठे हंस–हंसकर बातें कर रहे थे।

'मारो, मारो, मार डालो।' कहते हुए भीड़ टूट पड़ी थी उनके परिवार पर। रहमत मियाँ नहीं समझ पाए थे कि उनका अपराध क्या है।

'क्यों मार डालना चाहते हो, मुझे और मेरे परिवार को।' हाथ जोड़ते हुए विनम्रता से बोले थे रहमत मियां।

हालांकि उन्मादी उनकी बात नहीं सुन रहे थे फिर भी एक समझदार सा व्यक्ति बोला था, 'अरे भाईयो शांत हो जाओ। पहले इससे सही बात जान तो लो कहीं ऐसा न हो कि इसकी कोई गलती ही न हो।'

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

डॉ. पूरन सिंह

भारत सरकार में प्रथम श्रेणी अधिकारी डॉ. पूरन सिंह के चार कहानी संग्रह और छह लघुकथा संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। मर्मस्पर्शी कथानकों का चयन इनकी अपनी विशेषता है।

संपर्क : 240, बाबा फरीदपुरी, वेस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली–110008
मो. : 9868846388

'नहीं, शर्मा जी। मैंने इसे गाय का मांस लाते देखा है।' हाथ में फरसा लिए कोई चिंघाड़ा था।

'गाय हमारी माता है और ये काफिर उसी का मांस खाते हैं इन्हें तो जिन्दा नहीं छोड़ना है।' महाराणा प्रताप के सदृश भाला थामे कोई गरजा था।

शर्माजी थोड़े से शांत प्रकृति के व्यक्ति हैं सो बोले थे, 'रहमत मियां सच क्या है। बताओ, देख लो, तुम्हारे झूठ बोलने का क्या मतलब हो सकता है।'

'आपसे एक इल्तजा है। पहले आप मेरे घर की तलाशी ले लें। अगर मेरे घर में गाय का गोश्त निकल आए तो हम पांचों को आप अभी के अभी कत्ल कर दें।' अपनी ईमानदारी और नेकनीयती पर पूरा भरोसा था रहमत मियाँ को।

'ये मीठी–मीठी बातें बनाकर उल्लू बनाना चाहता है, शर्माजी। इसकी एक न सुनो। मारो, मार डालो, अभी।' हाथ में त्रिशूल पकड़े, बड़े से पेटवाला, त्रिपुण्डधारी, जनेऊ खींचता हुआ कोई बोला था।

'नहीं, रहमत मियाँ की बात तो माननी ही होगी।' शर्मा जी बोले थे।

और भीड़ उनके घर में पिल पड़ी थी। एक–एक चीज बिखेर दी थी। कोना–कोना देख मारा था। कहीं कुछ नहीं मिला था। सभी

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

शर्मसार थे कि कोई गुर्राया था, 'वो काली वाली पोलिथिन कहाँ है रहमत मियाँ जिसमें तू गाय माता का.....।'

'अच्छा वह काली वाली पोलीथिन!' इस बार रहमत मियाँ की पत्नी बोली थी।

'हाँ, वही'

रहमत मियां की पत्नी काली वाली पोलीथिन ले आई थी। इसके पहले कि वे उसे खोलती किसी ने उनके हाथ से छीन ली थी पोलीथीन और एक ही पल में उसमें रखी वस्तुएं बिखेर दी थीं सभी के सामने। चारों और खील बतासे और चीनी से बने घोड़ा, हाथी, ऊँट बिखर गए थे। अब सभी सन्न थे मानो तूफान के बाद की शांति छा गई हो कि रहमत मियां बोले थे, 'परसों.... परसों दीवाली है.. इसीलिए हम भी खील बतासे ले आए थे। हमारे बच्चों ने भी जिद की थी के वे भी खील बतासे खाएंगे। वे भी दिवाली मनाते हैं।'

'तो तूने ये बात पहले क्यों नहीं बताई।' कोई अब भी बेशर्म बना हुआ था।

'आपने मौका ही नहीं दिया।' रहमत मियां बोले थे।

किसी के पास कोई जवाब नहीं था।

'एक बात कहूँ आपसे।' बोले थे रहमत मियां ।

'..........!'

'बहुत सुन्दर देश है हमारा। इसे धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर कलंकित मत करो। बहुत आसान है किसी को मार डालना। बिल्कुल असंभव है किसी को जीवन दे पाना। एक बार प्यार से रहकर तो देखो। ... अगर ऐसा नहीं किया तो ऐसा न हो कि देर हो जाए और हम सभी के हाथों में कुछ न रहे। मानकर तो देखो मेरी बात।' और इतना कहकर रहमत मियाँ ने हाथ जोड़ दिए थे।

उनकी बात सुनकर हवा में लहराते, फरसे, भाले, तलवारें और त्रिशूल नीचे झुक गए थे और उन्हीं के साथ झुके हुए थे सभी के सिर तभी शर्मा जी ने अपनी दोनो बाँहें फैला दी थीं, जिनमें रहमत मियाँ समा जाना चाहते थे।

***

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

फार्म – 4

स्माचार–पत्र पंजीयन केन्द्रीय कानून 1956 के आठवें नियम के अन्तर्गत **'मधुराक्षर' त्रैमासिक पत्रिका** से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का आवश्यक विवरण–

1. प्रकाशन का स्थान : **जिला कारागार के पीछे, 9 ब, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212601**
2. प्रकाशन की आवर्तिता : **त्रैमासिक**
3. प्रकाशक/मुद्रक का नाम : **बृजेन्द्र अग्निहोत्री**
4. राष्ट्रीयता : **भारतीय**
5. सम्पादक का नाम : **बृजेन्द्र अग्निहोत्री**
6. राष्ट्रीयता : **भारतीय**
7. पूरा पता : **जिला कारागार के पीछे, 9 ब, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212601**
8. कुल पूंजी का 1 प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता : **स्वत्वाधिकारी बृजेन्द्र अग्निहोत्री**

*''मैं **बृजेन्द्र अग्निहोत्री** घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं।''*

–बृजेन्द्र अग्निहोत्री

लघुकथा

10वीं का इम्तिहान

राजेश कुमार

इम्तिहान की तारिख जैसे–जैसे नजदीक आने लगी मेरे मन के भीतर बेचैनी और बढने लगी। एक सुबह स्वाध्याय करने बैठा ही था– मेरी बेचैनी मेरे माथे चढ गयी और मैं जोर–जोर से रोने लगा, गला रूध सा गया, मन विह्वल हो उठा। पिताजी और घर के और सदस्य मेरे समीप आ गये और पूछने लगें। क्या हुआ!!! क्यों रोये जा रहे हो! बात क्या है! मैं रोते रोते बिना किसी की ओर देखे बोलता चला गया कि मुझे पढाई करनी है। पिताजी ने कहा तो किसने रोका है! मैंने कहा ऐसे में मेरी पढाई नहीं हो पाएगी। मैं अपनी पढाई के लिए पूरा समय चाहता हॅू और घर से दूर रह कर पढना चाहता हॅू और यदि मैं अपना लक्ष्य पूरा नहीं कर सका तो अपनी पढाई बीच में ही छोड़ दूंगा। पिताजी और सबों ने इस बात की सहमति और तसल्ली दी की ठीक है अब से केवल अपने पढाई पर घ्यान दो और मेरे घर के सामने की सड़क के दूसरी तरफ पिताजी के दोस्त का बड़ा–सा मकान था। जिसमें नीचे का एक खाली कमरा मुझे दे दिया गया।

मैंने एक साधारण छात्र के रूप में प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की थी अर्थात सामान्य परिवार से होने के साथ–साथ पढने में भी सामान्य ही था, किन्तु असामान्य केवल एक बात थी वो ये थी कि मैं अपने 10वीं के इम्तिहान में अव्वल आने की चाहत रखता था। इसे चाहत मात्र ही नहीं कहा जा सकता, अगर सही मायने में कहा जाए तो यह मेरा लक्ष्य बन गया था। वैसे फिर भी पढाई के प्रति मेरा लगाव तो था ही परन्तु इम्तिहान में अव्वल आने के लिए लगन और यथोचित

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

परिश्रम करने की पूरी मंशा भी थी। अगर अभाव था तो बस समय का! क्योंकि मैं अपने छः भाई–बहनों में सबसे कनिष्ठ जो था और कनिष्ठ को सबसे ज्यादा प्यार मिलता तो है, परन्तु उसे प्यार की कीमत भी चुकानी पड़ती है। जो मेरे लिए उस वक्त परेशानी का और समयाभाव का मूलभूत कारण था। उस पर एक कारण और था जो आजीविका से जुड़ा था– घरदुकनिया का होना। आठ सदस्यों के परिवार का भरण–पोषण एक आटे–चक्की से ही होती, जो घर में ही थी, जहॉ समय देना मेरी नैतिक जिम्मेदारी भी थी। इन सबों के बीच सामंजस्य बिठाना आसाना नहीं था। वैसे पिताजी ने कभी भी पढाई से मुंह मोड़ने न दिया, परन्तु इन सबके बावजूद समय का समायोजन करने का भरपूर प्रयास करता। वाबजूद स्वाध्याय के लिए यथोचित समय की कमी ही रहती थी, ऐसा सामान्य परिवार के छात्र के लिए कोई असमान्य बात न होगी! ट्यूशन जाना, स्कूल जाना, दुकान पर समय देना, घर आये मेहमान को समय देना, स्वाध्याय करना इस सब के बीच कहीं न कहीं एक घुटन–सी महसूस करने लगा था। पिताजी से अपनी बात करने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था आखिर सभी मेरे अग्रज भाई–बहनों ने इसी के बीच अपनी–अपनी पढाई की थी। पर 10 वीं के इम्तिहान में अव्वल आना इस तरह संभव न था और न ही मेरे भाई– बहनों में किसी ने इस लक्ष्य को हासिल किया था। मैंने

राजेश कुमार

कला शिक्षक राजेश कुमार कथा साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान बना चुके हैं। साधारण–सी विषयवस्तु को लेकर अपने विशेष शिल्प के सहारे उसमें उत्कृष्टता का समावेश करना इनकी विशेषता है।

मो. : 9868846388
ईमेल : rajeshraj44@gmail.com

मन ही मन यह ठान ली थी कि यदि मैं अपना लक्ष्य पूरा नहीं कर सका तो आगे की अपनी पढाई छोड़ दूंगा और छोटा–मोटा कोई कारोबार शुरू कर दूंगा। हांलाकि वैश्य समुदाय में जन्म लेकर भी मुझें बनियागिरी नापसंद थी।उस समय मेरे मुहल्ले में एक हेडमास्स्टर,एक वकील और एक एमबीबीएस डाक्टर मात्र थे –बाकी सभी मेहनतकश कामगार अक्सर पिताजी भी कहते आज के युग में भगवान मिल सकते हैं पर नौकरी नहीं मिल सकती। यह सुन सुन कर बड़ा हुआ था मैं।

ऐसे समय में नौकरी का ख्याल तो मन में नहीं आता परन्तु अपने लक्ष्य को पाने की चाहत से मन बैचेन और अधीर जरूर हो उठता। अब मेरे पास स्वाघ्याय के लिए एक कमरा था, जहां केवल मैं अपने पाठ्य–पुस्तकों के साथ वहां अपनी बनायी रूटीन में ढल गया और निर्धारित समय सारणी के अनुसार स्वाध्याय करते हुए अपने समय का भरपूर सदुपयोग किया करता। घर पर क्षुधापूर्ति या अति आवश्यक कार्य के लिए ही मेरा आना होता। वैसे भी मेरे पास दोस्तों की लम्बी लिस्ट नहीं थी। एक या दो ही दोस्त हुआ करते थे जिनके साथ ट्यूशन जाना होता। मैंने अपनी दोस्ती जो उन किताबों से कर ली थी। मां सरस्वती की कृपा से इम्तिहान की तारीख के समीप आने तक मेरी पढाई में उत्तरोत्तर सुधार होता गया, लगभग ये तीन महीने मेरे लिए वरदान साबित हुए और एक महीना किसी कारणवश इम्तिहान की धोषित तारीख का आगे बढ जाना, मुझे सभी विषयों पर पकड़ बनाने में सहायक सिद्व हुआ। मैं अपने स्वाध्याय में उन विषयों पर ज्यादा जोर देता जो मुझे कठिन लगते। संस्कृत, गणित और सामाजिक विज्ञान हालांकि मेरे प्रिय विषय थे। छात्र अक्सर अपने प्रिय विषयों में ही ज्यादा रुचि दिखाते हैं और कठिन विषयों से दूर भागते हैं। यह बात तभी अपनी कक्षाओं में समझ आ गयी थी। इसका फायदा यह हुआ कि मैंने सभी विषयों में समान रूचि दिखाई और तो और इम्तिहान के लिए भी कई नीती अपनी सूझबूझ और अनुभव से बनाये जो मुझे लक्ष्य हासिल करने में सहायक सिद्ध हुआ। जैसे परीक्षा स्थल पर ससमय पहुंचना, परीक्षा के दरम्यान सुपाच्य और सादा भोजन करना, परीक्षा के दरम्यान गणित विषय में हल दीर्घउतरीय प्रश्न से शुरूआत करना, इम्तिहान में अतिरिक्त कॉपी की समय से मांग करना, किसी जटिल प्रश्न में न उलझना आदि आदि। खासकर

प्रत्येक विषय के इम्तिहान के उपरांत उसका स्व–मूल्यांकन कर संभावी प्राप्तांक को अपनी डायरी में नोट करना । यह समझ मुझे अपने लक्ष्य को पाने के लिए ही आयी होगी।

आखिरकार मेरे इम्तिहान के परिणाम पाने का दिन भी आ ही गया और मेरी खुशी का ठिकाना न रहा, क्योंकि मैं अब आगे की पढाई कर सकता था। परिणामतः इम्तिहान में अव्वल तो नहीं, पर प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण जरूर हुआ। इसकी खुशी सिर्फ मुझे ही नहीं, मेरे माता–पिताजी के साथ साथ परिवार के सभी सदस्यों को हुई। मैं गौर्वान्वित महसूस कर रहा था, क्योंकि परिवार में प्रथम छात्र था जो 10वीं के इम्तिहान में प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हुआ। यह सफलता सिर्फ मेरी नहीं थी पूरे परिवार की थी, क्योंकि इस सफलता ने मेरे लिए आगे का रास्ता खोल दिया।

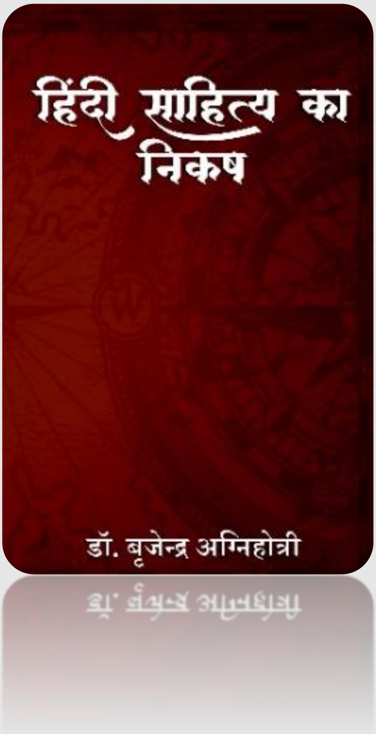

हिंदी साहित्य का निकष

डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

आईएसबीएन : 978-93-90548-81-1

संस्करण : 2020, मूल्य : 299/-

तीसरा जेंडर

भावना ठाकर
बेंगुलूरु, कर्नाटक
bt100564@gmail.com

आज सागर को उसके सगे माँ बाप ने ही कह दिया– 'जा जाकर कहीं डूब मर तेरे जैसी औलाद से तो बेऔलाद अच्छे, तुमने तो हमें समाज में कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं छोड़ा, कौनसे जन्म के पाप थे जो तेरे जैसा आधा–अधूरा हमारे पल्ले पड़ा।'

सागर बहुत गिड़गिड़ाया– 'पापा मुझे घर से मत निकालिए मैं कहाँ जाऊँगा ? मैं खूब पढ़ूँगा, आपका सहारा बनूँगा, पड़ा रहूँगा घर के कोने में और अपनी रोटी खुद कमाऊँगा। तीसरे जेंडर के रूप में जन्मा उसमें मेरा क्या कसूर ? आप की ही संतान हूँ, मुझे आपसे दूर मत कीजिए!'

पर माँ–बाप का इरादा अटल था।

सागर ने पूरी रात सहम कर कशमकश में बिताई, जितना सोचा उतना उलझता गया। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, जिऊँ की खुदकुशी कर लूँ ? पर ना मेरी खुदकुशी मेरे जैसे हजारों लोगों के लिए आत्मबल गिराने वाली साबित होगी, तो क्या हुआ की मैं आम इंसानों की तरह नहीं जीने का हक तो मुझे भी उतना ही है। लेकिन इतनी बड़ी दुनिया है पर मेरा अपना कोई नहीं, अपने ही माँ बाप से मिली

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

नफरत को कैसे सहूँ। इससे तो बेहतर है मेरे जैसों के लिए बनाए गए समूह का हिस्सा बन जाऊँ, कम से कम मुझे समझने वाले मेरे जैसे मेरे अपने तो होंगे।

आज एक ठोस निर्णय के साथ सागर अपने ही जन्मदाता का घर छोड़कर किन्नरों के समूह में शामिल होने जा रहा था। सागर के उस निर्णय पर न माँ का हृदय पिघला, न पापा की आँखें नम हुई, दोनों की आँखों में सागर को एक सुकून दिखा मानों सर से बोझ हट गया हो। भारी हृदय से सागर आज अपने ही घर की दहलीज से निकलकर ढूँढने निकल गया एक टुकड़ा आसमान जिसकी छाँव तले बाकी की जिंदगी गुजार सकें।

किन्नरों की सरदार नीलम ने सागर को बड़े ही प्यार से अपनी आगोश में भर लिया ये कहकर कि घबरा मत जिसका कोई नहीं होता उसके हम होते है आजा यहाँ सब तेरे अपने ही है और उस उष्मा सभर आलिंगन में आज पहली बार सागर को माँ की ममता का एहसास हुआ।

सारे समूह ने सागर का बड़ी खुशहाली से स्वागत किया। भले पिता के घर जितना बड़ा घर नहीं था, खोली में भी अपनापन पाकर सागर का चेहरा खिल उठा। यहाँ किसी के साथ खून का रिश्ता न होते हुए भी सब अपने लगे और आज एक कड़वाहट भरी मुस्कान के साथ सागर ने पास पड़ी पानी से भरी बाल्टी खुद के ऊपर उड़ेल दी और पिछले रिश्तों का अग्निसंस्कार कर दिया।

जीवन में श्रम की महत्ता

शंकरलाल माहेश्वरी
पूर्व जिला शिक्षा अधिकारी
ऑगूचा, भीलवाड़ा, राजस्थान
मो. 9413781610

जीवन में सफलता अर्जित करने के लिए श्रम शक्ति का विशिष्ट महत्व है। बौद्धिक रुप से हम कितने ही सक्षम हो किन्तु मंजिल की अभिप्राप्ति मेहनत के बिना नहीं हो सकती। उद्देश्य प्राप्ति के लिए कर्म, विचार और भावना का ध्रुवीकरण होना नितान्त आवश्यक है। अपनी सफलता के इंजीनीयर आप स्वयं है। हम अपनी आत्मा की ईंट और जीवन का सीमेंट उस स्थान पर लगावें जहाँ चाहते है फिर परिश्रम का प्लॉस्टर चढ़ाकर सफलता की मजबूत इमारत खड़ी कर सकते है। याद रहे, सफलता का एक दरवाजा बंद होता हैं तो श्रम साधना से दूसरा दरवाजा खोला जा सकता है।

जो व्यक्ति सफलता– असफलता का विचार न करते हुए निष्काम भाव से कर्मरत रहता है वह अर्जुन की तरह सफल हो जाता है। कार्य के प्रति एकाग्रता का भाव रखते हुए लक्ष्य के प्रति सजग रहकर जो अनुकूल परिश्रम करता है वह कभी निराश नहीं होता। सफलता अवश्य ही उसके चरण चूमती है। आप जानते हैं कि सफल लोगों को असफल लोगों से अलग करने वाली इकलौती चीज है कि वे बहुत कड़ी मेहनत करने के इच्छुक होते हैं। बहुत कम लोगों में क्षमता का अभाव रहता है लेकिन वे असफल इसीलिए हो जाते हैं कि वे निष्ठापूर्वक परिश्रम नहीं कर पाते। समय की रेत पर कदमों के निशान बैठकर नहीं बनाये जा सकते अपितु अपने पुरुषार्थ के बल पर

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

ही बनाये जाते है। सदा याद रखो, मोती किनारे पर सहज उपलब्ध नहीं होते यदि मोती पाना हैं तो समुद्र में गोता तो लगाना ही पड़ेगा।

जीवन में सफलता अर्जित करने के लिए संघर्ष तो करना ही पड़ता है। दुनियाँ में जितने इतिहास पुरुष हुए है उन्होने कठोर परिश्रम कर जीवन जीया हैं। साधना की है। संघर्ष किया है। कठिनाइयों और समस्याओं से झूझते हुए जीवन पथ पर आगे बढ़े है। जितने भी महान राजनेता, शिक्षाविद्, उद्योगपति, वैज्ञानिक, चिकित्सक तथा समाजसुधारक हुए हैं उनका जीवन संघर्षमय रहा है। आँधी और तूफानों का सामना करते हुए कठोर साधना के साथ जीवन पथ पर अग्रसर हुए हैं। उन्होने नही श्रमसाधना, श्रमशक्ति और लगन से सफलता की सीढ़ियां पार कर मंजिल तक पहुंचने का सौभाग्य प्राप्त किया है।

जीवन में महत्वपूर्ण चीज विराम नहीं अपितु संघर्ष है। मुख्य जीतना नहीं बल्कि अच्छी तरह झूझना है। दृढ़ इच्छा शक्ति हो और श्रम के प्रति आस्था हो तो आतशी शीशा खुद व खुद मिल जाता है। जो अवसरों को खोज निकालता हैं किसी वस्तु की इच्छा कर लेने मात्र से ही वह उपलब्ध नहीं हो जाती। इच्छा पूर्ति के लिए कठोर परिश्रम व प्रयत्न अत्यावश्यक हैं। इतिहास व पुराण साक्षी है कि मनुष्य के संकल्प और तदनुसार परिश्रम से देव दानव भी पराजित हो जाते है। जहाँ पुरुषार्थ समाप्त होता हैं वहीं हार की शुरुआत होती है। आप धीरज मत खोईये, परिश्रम के साथ अपना कदम आगे बढ़ाइये, जीवन में कामयाबी हासिल करने के लिए कर्म को अपना लक्ष्य बनाइये। जन्म से महान होना पैतृक विरासत हो सकती हैं किन्तु आसमान को छूना है तो मेहनत तो करनी ही होगी।

श्रमशक्ति जीवन में सबसे बड़ी शक्ति है अगर आपके पास वह शक्ति हैं जो जीत आपकी है। श्रमनिष्ठा तो वह शक्ति है जिससे आप हिमालय तक को पार कर सकते हैं। यदि आप कमजोर हैं तो निराश मत होइये, दिमाग को केन्द्रित कर पुनः परिश्रम करो और लक्ष्य को साध लो। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था। '' नीति परायण, साहसी और धुन के पक्के तथा परिश्रमी बनो तुम्हारे नैतिक चरित्र में कोई धब्बा न हो, मृत्यु से भी मुठभेड़ करने की हिम्मत रखो।'' जीवन में

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

गिरना उतना महत्वपूर्ण नहीं होता जितना गिरकर उठना और फिर मेहनत करके आगे बढ़ना। जीवन तो दूध के समुद्र की तरह है। आप इसे जितना मथेंगे आपको इससे उतना ही मख्खन मिलेगा। जहाँ मेहनत प्रबल होती हैं वहाँ मुश्किले दुर्बल हो जाती है जो व्यक्ति दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ कठोर परिश्रम करता है तो उसकी मुश्किले भी हार जाती है। थॉमस एडीसन का कथन हैं कि ''कड़ी मेहनत का कोई विकल्प नहीं है'' यदि आपमें श्रम के प्रति आस्था हैं तो आप कुछ भी कर सकते है। मेहनत प्रगति का स्त्रोत है। यदि ये है तो सफलता है और नहीं है तो सिर्फ बहाने हैं। ईश्वर ये नहीं देखता हैं कि हम कितना काम करते हैं बल्कि यह देखता है कि हम उस काम को कितनी मेहनत से करते है। आप निरन्तर आगे बढ़ने की इच्छा शक्ति बनाये रखे। परिश्रम पूर्वक अपने मार्ग पर अग्रसर होगें तो आपकी राह के काँटे भी फूल बन जायेगें। इतिहास साक्षी हैं, जीवन में सफल एवं महान बनने का मार्ग कर्मशीलता, कठिन परिश्रम, अध्यव्यवसाय के सोपानो से जाता है। जो लोग काम के प्रति उसी प्रकार समर्पित रहते हैं जिस प्रकार एक पर्वतारोही अपनी कुदाल द्वारा अपना मार्ग प्रशस्त करता हैं अथवा कोई श्रमिक अपने मार्ग में आने वाले झाड़ झंकाड़ो को अपने फावड़े से साफ करता हुआ आगे ही आगे बढ़ता रहता है, ऐसे ही लोग अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल होते है।

एक कथा हैं– एक बार पृथ्वी पर लक्ष्मी आई। उन्होने सुन्दर नगर वासियों को अपने पास बुलाया और अपना परिचय देते हुए कहा ''मैं लक्ष्मी हूं यहाँ के निवासियों को उनकी इच्छा के अनुसार वरदान देने आई हूँ तुम लोगों में से जो भी कुछ मांगना चाहे व आकर मुझसे मांग ले। पूर्णिमा की संध्या को मैं लक्ष्मी मंदिर मे आऊंगी, सब वहीं पर इकठ्ठे हो जाना। किसानों के पुत्रों को जो खेती बाड़ी करके फसल उपजाने के लिए खून पसीना एक करते थे, लक्ष्मीजी द्वारा ऐसा सरल उपाय सुनकर प्रसन्नता हुई। वे वरदान प्राप्त करने वाले दिन की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे। धरमी माँ युवकों को काम करने की लगन और उत्साह ही ठण्डा पड़ता हुआ देखकर विचलित हो उठी। उन्होने समस्त कृषक–पुत्रों को बुलाया और बड़े

स्नेह से समझाकर कहा– "पुत्रो! तुम मुफ्त की दौलत प्राप्त करने के चक्कर में मत पड़ो, परिश्रम करते रहो क्योंकि– 'श्रमम् बिना किं अपि साध्यम्' अर्थात बिना मेहनत किए मनुष्यों को कुछ नहीं मिलता। तुम कर्म करते जाओ मैं तुम्हे किसी भी तरह का अभाव नहीं रहने दूँगी"।

वस्तुतः जीवन में विशिष्ट उपलब्धियाँ अर्जित करने के लिए व्यक्ति को कर्मशील होना चाहिए तथा अपने पुरुषार्थ के बल पर ही कठोर मेहनत के साथ जीवन यापन करे तो निश्चय ही वह सुखी, सम्पन्न और सेवाभावी बनकर आदर्श जीवन जीने में सफल होगा।

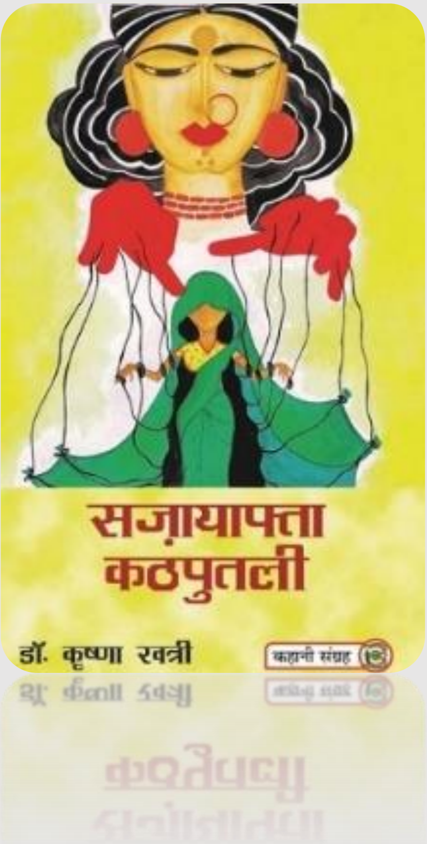

सज़ायाफ़्ता कठपुतली

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-946859-0-6

संस्करण : 2020, मूल्य : 250/-

लेख

सामाजिक क्रांति के अग्रदूत ज्योतिबा फुले

डॉ. कांतिलाल यादव
राष्ट्रीय महासचिव
अखिल भारतीय दलित एकता मंच
मो. 8955560773

महात्मा ज्योतिबा फुले ने आधुनिक भारत में समाज सुधार आंदोलन से देश में न्याय, समता, स्वतंत्रता, बंधुता एवं सामाजिक जनजागृति की बुनियाद खड़ी की थी. यह देश के प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने दलित, स्त्री–शिक्षा, किसान–मजदूर की आजादी हेतु वैचारिक एवं सामाजिक जन क्रांति का बिगुल बजाया था। इंसान की दयनीय आर्थिक स्थिति, बिगड़ी समाज व्यवस्था ,डूबती धर्म संस्कृति, अशिक्षा के अंधकार में तड़पती मानवता, अर्थहीन कृषि व्यवस्था, रोती बिलखती दलित स्त्री की दयनीय व्यवस्था पर अपने क्रांतिकारी विचारों से जातिवादी ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर जोरदार प्रहार कर मानवतावादी विचारधारा की बुनियादी नींव रखी थी। ज्योतिबा का जन्म 11 अप्रैल, 1827 में पुणे महाराष्ट्र में हुआ था। उनके पिता जी का नाम गोविंदराव माली और माता का नाम विमला बाई था। जिसे चिमणाबाई भी कहते थे। ज्योतिबा के भाई का नाम राजाराव था। ज्योतिराव के समय देश की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, व आर्थिक हालात बहुत बुरे दौर से गुजर रही थी। उस समय देश में अंग्रेजी शासन सत्ता थी। उस

दरमियान देश में दलित, महिला, किसान, मजदूर की हालत बहुत ही दयनीय थी। मानवता चरमरा रही थी। तब उन्होंने 1873 में कहा था–

'विद्या बिना मती गई,
मति बिना गति गई,
गति बिना नीति गई ,
नीति बिना संपत्ति गई,
संपत्ति बिना शुद्र पतीत हुए,
इतना सारा घोर अनर्थ मात्र विद्या के कारण हुआ।'

महात्मा ज्योतिबा फुले मात्र 9 माह के थे तब उनकी मां का देहांत हो गया। उनका लालन–पालन उनकी विधवा बुआ सगुनाबाई ने किया। 7 वर्ष की अवस्था में मराठी की प्रारंभिक पढ़ाई शुरू की किंतु समाज के रूढ़िवादियों ने पिता को बहका कर उनको पढ़ने से रोक दिया गया। उन्हें 13 वर्ष की उम्र में नव वर्ष की बालिका सावित्रीबाई जो सतारा जिले की रहने वाली थी 1840 में उनका विवाह हो गया। शादी के बाद 14 वर्ष की आयु में 1841 में पुणे क्रिश्चन स्कूल में पुनः पढ़ना प्रारंभ किया। ज्योतिबा के एक शिक्षक ने ज्योतिबा से प्रभावित होकर थॉमस पेन की 'राइट्स ऑफ मैन' (मनुष्य के अधिकार) पुस्तक दी जिस उन्होंने तथा उनके मित्र सदाशिव गोवड़े को भी पढ़ाई वे दोनों इससे खूब प्रभावित हुए। स्कॉटिश मिशन से शिक्षा प्राप्त करने पर उन्हें मनुष्य के कर्तव्य और अधिकारों का ज्ञान हुआ। यहीं से उन्हें धर्म चिंतन का प्रारंभ हुआ। यहां उन्हें यह भी ज्ञान कराया गया– ईश्वर सभी मनुष्यों के पीता है और सभी मनुष्य दूसरे के भाई–बहन हैं। ईश्वर केवल जगत का पिता ही नहीं बल्कि वह न्यायदाता भी है। मनुष्य न्याय–नीति से आचरण करें। ईश्वर एक है। सभी छोटे–बड़े स्त्री–पुरुष ईश्वर की संताने हैं। अपने शत्रुओं से भी प्रेम करो। तुम लोगों के साथ वैसा ही बर्ताव करो जैसा तुम अपने साथ चाहते हो। ईश्वर दयावान हैं, वैसे तुम भी दयावान बनो। इस प्रकार ईसाई धर्म के मानवतावाद ने ज्योति राव के दिल दिमाग को बहुत ही प्रभावित किया। उन्हें ईसाई धर्म से मानव धर्म को सीखने का अवसर प्राप्त हुआ। 1847 में उन्होंने अंग्रेजी स्कूल से अपनी शिक्षा पूरी की 1848 में 21 वर्ष की उम्र में ज्योतिबा फुले ने स्कूल छोड़ कर सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। उस समय अंग्रेजों के द्वारा किसानों

से अत्यधिक मात्रा में लगान वसूल किया जाता था। और किसानों को कठोर दंड दिया जाता था। अगड़ी जातियों का बड़ा वर्चस्व था और शूद्र और अतिशुद्रों का हाल बेहाल था। स्त्रियों की दशा दीन हीन थी। महात्मा फुले अछूतों की गुलामी की जड़ अशिक्षा को मानते थे। उनका कहना था– शिक्षा के द्वारा ही अछूतों का उद्धार संभव है।जब तक अछूत शिक्षित नहीं होगा तब तक छुआछूत को खत्म नहीं किया जा सकता है।

'दलित' शब्द सर्वप्रथम ज्योतिबा फुले ने दिया था। उन्होंने अतिशूद्रों के उत्थान के साथ–साथ स्त्री शिक्षा पर भी उन्होंने ध्यान दिया। क्योंकि हिंदू चतुर वर्ण व्यवस्था में महिलाओं का शोषण मुक्त किए बिना सच्चे रूप से महिला–आजादी प्राप्त करना असंभव है। इस हेतु उन्होंने स्त्री शिक्षा के लिए पाठशालाएं खोली। ज्योतिबा ने नारी शिक्षा और स्वतंत्रता का प्रारंभ ही अपने घर से किया। अपनी पत्नी सावित्रीबाई को पहले शिक्षित बनाया और अपने पुरुष के समान स्वतंत्रता प्रदान की।वास्तव में ज्योतिबा फूले भारतीय नारी शिक्षा और स्वतंत्रता के लिए एक प्रेरणा पुरूष थे। सावित्री बाई को उन्होंने शिक्षित कर उसी कन्या विद्यालय की देश की प्रथम शिक्षिका नियुक्त की। तब उन्हें तथा सावित्रीबाई को बहुत ही विकट परिस्थितियों का सामना करना पड़ा।नारी शिक्षा हेतु उन्होंने सर्वप्रथम 1848 में पुणे के बुधवार पेठ में अपने मित्र श्री भिड़े ने अपने घर में कन्या पाठशाला खोलने की अनुमति दी। तथा प्रथम पाठशाला खोली । बालिकाओं को पढ़ाने हेतु अपनी पत्नी सावित्रीबाई को शिक्षित किया और उन्होंने उस समय ठेकेदारी का कार्य संभाल कर उस विद्यालय को चलाया।ज्योतिबा का महिला शिक्षा के प्रति यह कहना था– 'एक शिक्षित माता अपनी संतान को जिस तरह व्यवहारिक और चारित्रिक तौर पर योग्य बना सकती है, उन्हें उस तरह हजार अध्यापक, गुरु भी योग्य नहीं बना सकते।'

गैर सरकारी स्तर पर नारी शिक्षा की शुरुआत करने वाले पहले भारतीय ज्योतिबा फुले थे। ज्योतिबा फुले के द्वारा अपनी पत्नी सावित्रीबाई फुले स्वयं के द्वारा पढ़ा कर आधुनिक भारत की प्रथम महिला शिक्षिका का गौरव प्राप्त किया। ज्योतिबा ने 1848 से1852 के

बीच अट्ठारह पाठशालाएं खोली थी। 1855 में रात्रि पाठशाला भी खोली थी। अंग्रेजी समाचार पत्र 'बॉम्बेगार्डियन' ने ज्योतिबा के अभिनंदन का समाचार सुर्खियों में प्रकाशित किया। इसमें लिखा गया– 'युवक ज्योतिराव फुले ने कुछ ही वर्ष तक लगातार कार्य करके अपने देशवासियों में शिक्षा का बहुत प्रचार–प्रसार किया और इस क्षेत्र में बड़ी प्रगति की।' ज्योति राव ने हिंदू धर्म के ग्रंथों को वेद, उपनिषद, पुराण जैसे ग्रंथों को, भगवान बुद्ध, महावीर, संत तुकाराम, मार्टिन लूथर किंग, प्रोफेसर विल्सन जॉन, अब्राहम लिंकन, थॉमस पेन के साहित्य को खूब पढ़ा। उन्होंने गुलामगिरी, तृतीय रत्न, छत्रपति शिवाजी, राजाराम भोसला का पखड़ा ,1883 में किसानों की समस्या पर 'किसान का कोड़ा', 'अछूतों की कैफियत', 'सार्वजनिक सत्य धर्म' जैसी महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी। उन्होंने 'दीनबंधु' नाम से एक साप्ताहिक अखबार भी प्रकाशित किया था।

इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया ने ज्योतिबा के कार्यों के बारे में सुना तो वे काफी प्रभावित हुई और तत्कालीन गवर्नर को आदेश दिया कि ज्योतिबा को सम्मानित किया जाए। सरकारी अधिकारियों ने एवं गणमान्य लोगों के बीच उन्हें 16–11–1852 को अभिनंदन समारोह में उन्हें ₹ 2000 की कीमती शॉल भेंट कर तथा 75000 की सहायता राशि की घोषणा कर सम्मानित किया। महात्मा ज्योतिबा फुले ने अपने जीवन में अनेक क्रांतिकारी जन आंदोलन किए। अछूतोंद्धार, अस्पृश्यता निवारण, विधवा विवाह, नारी शिक्षा, विधवा मुंडन प्रथा का अंत, सती प्रथा का विरोध, किसान आंदोलन, रात्रि पाठशाला, बाल हत्या प्रतिबंधक गृह की स्थापना, मानव अधिकार की रक्षा एवं जागृति, विधवा विवाह, बहू विवाह निषेध, बाल विवाह निषेध, जैसी जगन्य कुप्रथा पर अंकुश लगाया।

विधवाओं के मुंडन को रोकने के लिए ज्योतिबा ने पुणे में लगभग 500 नाईयों को इकट्ठा कर यह समझाया और कहा कि विधवाओं का अपमान मत करो मैं आपसे प्रार्थना करता हूं। तुम लोग मेरा साथ दो और विधवाओं के बाल काटने को रोक दो। इस प्रकार मुंडन प्रथा पर अंकुश लगा ।ज्योतिबा ने विधवा पुनर्विवाह के प्रयास किए और 8 मार्च 1807 में एक विधवा विवाह को कराने में उन्हें

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

सफलता प्राप्त हुई। अखबारों में यह खबर प्रकाशित हुई और महाराष्ट्र में जागरूकता का संचार हुआ। 1873 में ज्योतिबा ने विधवा आश्रम में काशीबाई नामक एक विधवा ब्राह्मणी ने बच्चे को जन्म दिया उस बच्चे का नाम यशवंत रखा बाद में उन्होंने उस बच्चे को गोद लिया। 8 मार्च 1860 को पुणे में ज्योतिबा फुले ने शेनवी जाति की एक विधवा का उन्हीं की जाति के विधूर से पुनर्विवाह करवाया। 1863 में बाल हत्या प्रतिबंधक गृह की स्थापना की। ज्योतिबा मानवता की करुणा के सागर थे। उन्होंने 1873 में बाल हत्या को रोकने हेतु श्बाल हत्या प्रतिबंधक गृहश की स्थापना की तथा इस गृह पर बड़े अक्षरों में लिखवाया इस शीर्षक से की– 'विधवाओं यहां आकर गुप्त रूप से तथा सुरक्षित रूप से बच्चे को जन्म दे सकती हो। तुम अपने बच्चे को ले जाती हो या रखती हो यह तुम्हारी इच्छा पर निर्भर रहेगा।'

धार्मिक तथा सामाजिक गुलामी की जड़े उखाड़ फेंकने के उद्देश्य से उन्होंने 24 सितंबर, 1873 में ज्योतिबा ने 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की इस संस्था ने समाज के बाह्यआडंबर को खत्म करने को था। 1875 में ज्योतिबा ने किसानों के हक के लिए आंदोलन किए और अंग्रेज सरकार से 'डेक्कन एग्रीकल्चर रिलीफ एक्ट' भी पास करवाया। 1883 में उन्हें अंग्रेज सरकार ने स्त्री शिक्षा के योगदान के लिए महात्मा ज्योतिबा फुले को 'स्त्री शिक्षण के जनक' कहकर गौरवान्वित किया। सन 1888 में ड्यूक ऑफ कनॉट महारानी विक्टोरिया के पुत्र थे। जब वे इंग्लैंड जा रहे थे। तब उन्होंने उनके सम्मान में एक भव्य विदाई समारोह का आयोजन कर उन्हें चेताया और कहा कि इंग्लैंड में आपकी माता जी से मेरा संदेश अवश्य पहुंचाएं– किसानों की दीन दशा के निवारण हेतु मेरी प्रार्थना है कि उन्हें शिक्षित करने का प्रबंध करें यह शिक्षित हो जाए तो अपनी दशा स्वयं सुधार लेंगे। महारानी विक्टोरिया के आदेश पर हंटर कमीशन का गठन हुआ और गांव–गांव किसानों के बच्चों को शिक्षा लाभ की नई क्रांति हुई। 1888 में उन्हें 'महात्मा' की उपाधि से सम्मानित किया गया।

उनका विश्वास था 'किसान सुखी तो संसार सुखी', किंतु आज दुर्भाग्य की बात है कि आज किसान सड़कों पर है। सरकार सुस्त है।यह विचारणीय प्रश्न है।

भारत के ढाई हजार वर्षों के इतिहास में ऐसा पहली बार करिश्मा करने वाले क्रांतिकारी कदम उठाकर अछूतों के लिए शिक्षा के द्वार खोलने वाले प्रथम भारतीय थे। उन्होंने कहा था– 'मनुष्य जाति से नहीं कर्म से महान, श्रेष्ठ बनता है।' उनका कहना था– 'अछूत मंदिर बना सकता है परंतु उसमें बैठे भगवान के दर्शन नहीं कर सकता। महिला बच्चा पैदा कर सकती है उसे दूध पिला कर बड़ा कर सकती है, परंतु स्वयं अपवित्र है, पढ़ लिख नहीं सकती उसे जबरन चिता में धकेला जाता है। क्या यही न्याय है ? क्या यही हमारी संस्कृति, सभ्यता, मानवता है ?' उनका कहना था धर्म का उद्देश्य मानवता की सेवा और एक नेक इंसान बनाने की है। उन्होंने आदमी–औरत को एक समानता का दर्जा देने हेतु भरसक प्रयास किया।

ज्योतिबा की विचारधारा के अनुसार प्रकृति ने सभी प्राणियों के साथ एक सा व्यवहार करने की शिक्षा दी है। जैसे– 'सूरज किसी भी एक क्षेत्र के सभी प्राणियों को एक समान ऊष्मा और प्रकाश देता है। हवा सभी के लिए प्राणों का एक सा संचार करती है और बादल एक से जल की वर्षा करते हैं। अतः सभी प्राणियों के प्राणों का मूल्य एक समान ही समझना चाहिए। मनुष्य की मनुष्यता में ऊंच–नीच की समानता होनी चाहिए। सद्भाव और स्वभाव एकसा होना चाहिए।'

ज्योतिबा फुले के बारे में महाराजा सयाजीराव गायकवाड ने कहा था– 'महामानव ज्योतिबा फुले भारत के वाशिंगटन है।' डॉ बाबासाहेब आंबेडकर ने कहा था और वे ज्योतिबा से बहुत प्रभावित थे उन्होंने ज्योतिबा को एक महान पुरुष की संज्ञा दी थी उनका मानना था कि छुआछूत को शिक्षा के माध्यम से समाप्त किया जा सकता है जब तक अछूत शिक्षित नहीं होगा तब तक छुआछूत को खत्म नहीं किया जा सकता। वे अपना उन्हें गुरु मानते थे। ज्योतिबा के बारे में बाबू जगजीवन राम ने कहा था– 'महात्मा फुले दलित चेतना की दिशा में ज्योति पुरुष थे। दलितों व पिछड़ों के आंगन में

अकेले हजारों वर्ष के अंधेरे को चीरकर सूर्यरथ खींच कर लाए थे। निम्न वर्गों के लोगों में शिक्षा की किरण फुले ने ही बिखेरी। महात्मा फुले भारत की बुनियादी क्रांति के प्रथम महामानव थे। इसलिए वे महात्मा बुद्ध, महावीर, मार्टिन लूथर, नानक आदि के उत्तराधिकारी थे।'

उनका समर्पित व संघर्षमय जीवन आज के समय भी प्रेरणा का स्रोत है ज्योतिबा की महान् समाज सेवा को सुनकर महात्मा गांधी जब 1932 में पुना कि यरवदा जेल में बंदी थे तब उन्होंने ज्योतिबा के बारे में कहा था– 'ज्योतिबा एक सच्चा महात्मा है।'

सारे मानव जाति के लिए एक धर्म की परिकल्पना करने वाले सत्य पर और सत्य के आचरण पर जोर देने वाले मानवता के पुजारी, अछूतों के उद्धारक, महिलाओं के शुभचिंतक, किसान तथा मजदूरों के हितैषी ऐसे महामानव, क्रांतिकारी प्रेरणा के स्रोत,महान समाज सुधारक महात्मा ज्योतिबा फुले का निधन 26 नवंबर, 1890 को हुआ था।

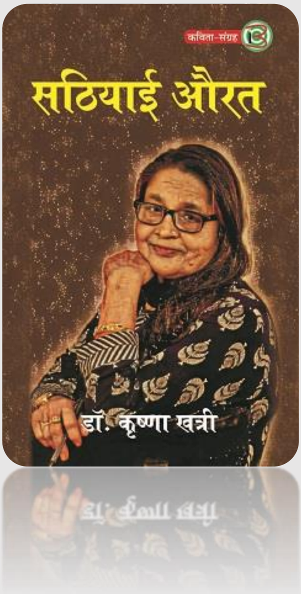

सठियाई औरत

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-9-2

संस्करण : 2020, मूल्य : 250/-

लेख

पहचान खोते पारंपरिक परिधान

अमित बैजनाथ गर्ग

ए–9, श्री राणी नगर, पालड़ी मीना, आगरा रोड, जयपुर, राजस्थान 302031

मो. 7877070861

अपनी संस्कृति को भुलाकर आज तक कोई अलग पहचान बना पाया हो, ऐसा उदाहरण मुश्किल ही देखने को मिलता है। वहीं अपनी संस्कृति को जिंदा रखकर अलग पहचान बनाने वालों के उदाहरण बहुतेरे मिल जाएंगे। धोरों की धरती राजस्थान की विविध रंगों तथा परंपराओं से सजी कला–संस्कृति न केवल अनूठी है, बल्कि अद्भुत भी है। सात समंदर पार के पर्यटकों को बरबस ही अपनी ओर आकर्षित करने वाली इस वीर प्रसूता धरती का इतिहास जहां एक ओर वीर–वीरांगनाओं की शौर्य गाथाओं से भरा पड़ा है, वहीं दूसरी ओर पधारो म्हारे देश जैसे ठेठ राजस्थानी शब्दों से आगंतुकों का स्वागत–अभिनंदन करता है।

प्रदेश के पारंपरिक तथा लजीज भोजन चूरमा–बाटी–दाल के स्वाद की महक ऐसी है, जिसे आप कभी नहीं भूल पाएं। यहां के पहनावे, बोली–भाषा और लोकगीतों–नृत्यों में जीवन के ऐसे कई रंग दिखाई देते हैं, जो परंपराओं तथा राजे–रजवाड़ों के शाही अंदाजों से रूबरू कराते हैं। इतिहास साक्षी है कि संकट की घड़ी में जब–जब देश ने प्रदेश की ओर देखा है तो हमारे रणबांकुरों ने कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक भारत के कण–कण का अपने खून से तिलक किया है। रेतीले धोरों की सोने सी माटी में सीमावर्ती बाड़मेर से लकर डांग क्षेत्र धौलपुर तक कई देवी–देवताओं का वास है। ऐसी देवतुल्य धरा राजस्थान के बारे में यूं तो ढेर सारी ऐसी विशेषताएं हैं, जिन पर बातें की जा सकती है, लेकिन आज बात करते हैं प्रदेश के पहनावे की।

राजस्थान में जहां मोट्यारों (पुरुषों) का पारंपरिक पहनावा धोती–कुर्ता और पगड़ी है, वहीं लुगाइयों (औरतों) का पारंपरिक पहनावा चोली–घाघरा है। झब्बेदार कुर्ता और रंग–बिरंगी पगड़ी–साफे में सजे पुरुष और ब्लॉक प्रिंटेड चोली–घाघरे में दमकती महिलाएं यहां की पारंपरिक पहनावे की उम्दा पहचान हैं। मजे की बात यह भी है कि प्रदेश में हर सौ किलोमीटर की दूरी पर जहां भाषा बदल जाती हैं, वैसे ही पहनावे में भी अंतर आता जाता है। झीलों की नगरी उदयपुर में पहनावे के लिए लहरिया प्रसिद्ध है, वहीं अलवर–भरतपुर की तरफ पारंपरिक वस्त्र कुर्ता–पायजामे का रूप अख्तियार कर लेते हैं। इसके अलावा प्रदेश में शादी–समारोहों के अवसर पर शेरवानी पहनना भी चलन में है। बारात में शेरवानी में सजे–धजे दूल्हे और कमर में कसी तलवार प्रदेश की शाही पहचान को बयां करती है। वहीं सतरंगी चोली–घाघरे और महीन धागे से बने झीने से आंचल में महिलाओं को बड़ी अदब–तहजीब के साथ राजस्थानी परिवेश को प्रस्तुत करते हुए देखा जा सकता है। इसके अलावा खादी भी यहां के पहनावे में अहम स्थान रखती है। आखिर क्यों न रखे, आजादी के दौरान फहराए गए पहले तिरंगे को बुना हुआ कपड़ा देने वाला गांव आलूदा भी तो राजस्थान में ही है। एक जमाना हुआ करता था, जब राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सरकारी एवं निजी समारोहों में राजस्थानीवासी यहां के पारंपरिक परिधानों को बड़े ही गर्व से पहनते थे और धोरों की पहचान को फख्र से पेश करते थे। इसके अलावा अभिवादन रूप में खम्मा घणी कहना भी एक विशिष्ट पहचान बन चुका था। तकनीकी समुन्नति के इस दौर में जैसे–जैसे समय ने करवट बदलना शुरू किया, हमने भी बदलना शुरू कर दिया। बदलाव प्रकृति का नियम है, लेकिन बदलाव सार्थक दिशा में हो तो अधिक बेहतर होता है।

पहनावे को लेकर इतने रंगों, इतनी विविधताओं के बावजूद भी आज प्रदेश के पारंपरिक वस्त्रों की पहचान धूमिल हो रही है। इसका एक बड़ा कारण राजस्थानी पहनावे के प्रति राजस्थानवासियों की ओर से बरती जा रही उपेक्षा है। अब न ही पैरों में जूतियां दिखाई देती हैं और न ही राजस्थानी परिधान? पगड़ी की शान भी अब शायद

शान में शुमार नहीं रही। ऐसा लगने लगा है कि धोती–कुर्ता किसी और सदी की बात है? मॉल कल्चर की चकाचौंध में भले ही हम अपने परिधान–परिवेश को विस्मृत करते जा रहे हैं, लेकिन बीते कुछ सालों में ऐसा करने के बाद हमने कुछ हासिल भी तो नहीं किया है। प्रदेश के सांस्कृतिक उत्सवों से लेकर तीज–त्योहार जैसे लोक कार्यक्रमों में भी राजस्थानी परिधानों में सजे लोग अब कम ही दिखाई देते हैं।

आधुनिक होना अच्छी बात है, लेकिन अपनी पहचान की कीमत पर आधुनिकता कितनी श्रेयस्कर है, इस बारे में हमें शायद अब चिंतन की दरकार है। प्रदेश की सांस्कृतिक विरासत धुंधली हो रही है, इस बारे में जब भी कभी किसी को दोषी ठहराने की बात आती है, तो हम सरकारों को दोषी बनाकर कटघरे में खड़ा कर देते हैं ओर अपनी जिम्मेदारियों से सहज–सुलभ रूप से मुक्ति पा जाते हैं। भला हो उन लोक गायकों–कलाकारों का, जो बुद्धिजीवियों की नजरों में कहने को तो अधिक शिक्षित नहीं हैं, लेकिन संस्कृति–परंपराओं के बारे में उनकी जानकारी देखते ही बनती है। निजी कार्यक्रमों से लेकर सरकारी बुलावे तक, सभी में इन्हें पारंपरिक वेशभूषा में शिरकत करते हुए देखा जा सकता है। वहीं कभी–कभार पर्यटन उत्सवों में शिरकत करने वाले लोग अलबत्ता पारंपरिक परिधानों की याद जरूर ताजा करा देते हैं। अपनी संस्कृति को भुलाकर कोई अलग पहचान बना पाया हो, ऐसा उदाहरण मुश्किल ही देखने को मिलता है। अपनी संस्कृति को जिंदा रखकर अलग पहचान बनाने वालों के उदाहरण बहुतेरे मिल जाएंगे। इसके लिए न्यूयॉर्क में रह रहे राजस्थानियों से बढ़कर कोई और मिसाल क्या हो सकती है? वहां बसे राजस्थानियों के समर्पण का ही परिणाम है कि वहां की विदेशी सड़कों पर प्रदेश के खान–पान, पहनावे और बोली के देसी रंग देखने को मिल जाएंगे। न्यूयॉर्क में हर साल होने वाला अंतरराष्ट्रीय राजस्थानी सम्मेलन भी इसका सजीव प्रमाण है। जड़ों को खोदकर कोई पेड़ कभी टिक पाया हो, ऐसा संभव नहीं है। हम मानें या न मानें, लेकिन हमारी संस्कृति, कला, पहनावा, रहन–सहन और भाषा हमारी पहचान हैं, जिससे अलग रह पाना हमारे हित में नहीं है। इनका महत्व समझना है, तो प्रदेश के किसी भी पर्यटन स्थल पर चले जाइए। वहां कई देशों के सैलानी आपको राजस्थानी रंगों में रंगे हुए आसानी से मिल जाएंगे।

लेख

समाज की उन्नति का पर्याय है स्त्री

डॉ. दीपा 'दीप'
सहायक प्राध्यापिका, दिल्ली विश्वविद्यालय
चलभाष 9654336989

स्त्री को बेदिमाग या 'इमोशनल फूल' कहकर उसकी निंदा करना बहुत ही उपहासास्पद है। या यूं कहना कि उनमें दिमाग ही नहीं होता, यह केवल समाज की संकीर्ण मानसिकता ही हो सकती है। स्त्री संवेदनाओं या इमोशंस का मजाक बनाने वाला समाज यह न भूले कि जन्म देने से लेकर उन्नति की सीढ़ियां चढ़ने तक का सफर वह स्त्री के सहयोग से ही पूरा कर पाता है। वही उसके लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर पुरुष को पुरुष बनाती है उसके पुरुषत्व को मां, बहन, पत्नी, बेटी बनकर संवारती है। खुद को खपाती है, दुनियाभर के कष्टों को झेलती है तब जाकर पुरुष को गढ़ती है, उसे एक नई पहचान देती है जिसे हरगिज नकारा नहीं जा सकता।

मदर टैरेसा अगर स्त्री न होती तो समाज के लिए उन्होंने जो किया ह, शायद ही कोई पुरुष कर पाता क्योंकि यह स्त्री में छिपा वात्सल्य ही है जो उसे पूजनीय बनाता है। पुरुषों में जिस तरह से पुरुषत्व जरूरी है स्त्रियों में उसी तरह से स्त्रीत्व जरूरी है जो उसकी संवेदनाओं से ही संभव है। पुरातन काल से यूं ही नहीं उसे देवी के रूप में पूजा जाता रहा है। उसके देवी बनने तक की ये यात्रा सामान्य नहीं रही। कभी सीता बनकर पति संग सभी सुख सुविधाओं को त्यागकर उसके दायित्वों का उसके संग वहन करने वाली उसकी संगिनी के रूप में घोर यातनाएं सहने वाली स्त्री के पीछे उसकी संवेदनाएं ही रही हैं। लक्ष्मण आदर्श भाई न होते अगर उर्मिला लक्ष्मण से उनके पति होने के दायित्वों का हवाला देकर उन्हें रोक लेती।

उनके आदर्श भाई बनने तक की उस जीवन यात्रा में उर्मिला जो कि एक स्त्री है उसके अमूल्य योगदान को भुला नहीं जा सकता।

हर पुरुष चाहता है कि उसकी पत्नी उसके प्रति उसके सारे दायित्वों को ईमानदारी से निभाए वो चाहे रम्भा के रूप में हों या फिर अन्नपूर्णा के रूप में। और इन सब कसौटियों पर कोई भी असंवेदनशील स्त्री नहीं उतर सकती। युग बदले सोच बदली किन्तु स्त्री के अस्तित्व को नकारकर कभी कोई राज्य या समाज न पनपा और है न ही पनप सकता है। नेपोलियन बोनापार्ट का यह कथन जो किसी भी समाज में स्त्री के महत्व को दर्शाता है अत्यन्त प्रशंसनीय एवम् सराहनीय है कि ष्यदि आप मुझे अच्छी माताएं दो तो मैं अच्छा राष्ट्र समर्पित कर सकता हूं।ष अर्थात् स्त्री ही सही मायने में एक आदर्श राष्ट्र की निर्माता है। उसकी कोख से ही संस्कृति और सभ्यता जन्म लेती हैं।

स्त्रियों में इमोशंस नहीं रहे तो कोई रिश्ता या समाज कभी भी उन्नति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता। क्योंकि प्रैक्टिकल होकर इंसान तरक्की या सुख सुविधाएं तो पा सकता है किन्तु सुकून नहीं। और स्त्री युगों से मां, पत्नी, बेटी, बहन, प्रेमिका बनकर पुरुष को संबल देती आई है। उसके बिना कोई भी रिश्ता या समाज अधूरा एवम् कमजोर ही है। इसलिए उसे इमोशनल फूल कहकर या उसके स्त्री होने पर लानत फेंकना ये केवल लोगों की संकीर्ण मानसिकता का ही परिचायक है। किन्तु जिस दिन उसका इमोशनल होना उनके लिए कितना जरूरी है इस विषय पर वे गंभीरतापूर्वक सोचेंगे तो उन्हें ज्ञात होगा उनकी जिन्दगी स्त्री के बिना, उसकी संवेदनाओं के अभाव में कितनी बेमानी है। और जिस विकास की वो दुहाई देता है जिसे उसने पाया है उस पर वो खुद ही सर पटक पटकर दम तोड़ देगा।

जब स्त्री संवेदनाओं से ऊपर उठकर एक नवीन पटल पर कदम बढ़ाती है तब लक्ष्मीबाई, अवंतिका, सावित्रीबाई फुले या अनन्य शक्तिशाली, प्रतिभाशाली शक्तियों से युक्त वीरांगनाओं का जन्म होता है जो किसी भी राज्य का प्रतिनिधित्व कुशलतापूर्वक करती हैं। इसलिए उनकी महत्वकांक्षाओं पर प्रश्नचिह्न विवादित है। वे संवेदनशीलता के कारण नदियों के निर्मल जल प्रवाह की तरह हैं। उन्हें शांत और स्वच्छ बहने दो अन्यथा उनके प्रवाह की रूकावट का अर्थ एक भयानक उत्परिवर्तन की आहट है।

स्मरण

मुनिया से महानायक

सरोज राम मिश्रा
शिक्षिका एवं रचनााकार
नोएडा

वैष्णव जन तो तेने कहिये,
जे पीर पराई जाणे रे ।।

पराई पीर को अपनी पीड़ा समझकर उसे खत्म करने का प्रयास का नाम है– मुनिया। 2 अक्तूबर, 1869 में पुतलीबाई और करमचंद गांधी के घर जन्म लेने वाला बच्चा, बचपन में श्रवण कुमार और राजा हरिश्चंद्र के चरित्र से प्रभावित हो मन–ही–मन सेवा व सत्य वचन का व्रत लिया। तब किसी नहीं सोचा था कि औसत बुद्धि और छोटे कद–काठी का मुनिया अपने सत्य अहिंसात्मक सिद्धांत से विशाल रूप धारण कर सारे संसार को अपने आकर्षण में बाँध, सभी को अपना अनुयायी बना लेगा ।

गांधी जयंती के अवसर पर गुलामी की पीड़ा से मुक्तय आजादी में साँस लेता भारतय न केवल उनके बलिदान के लिए कृ तज्ञ है बल्कि 'गांधी दर्शन' द्वारा उन्होंने जो अहिंसा का मार्ग आलोकित किया उसे भी स्मरण करने का दिन है। गांधी दर्शन सिखलाता है कि अहिंसा के द्वारा, स्नेहिल प्रयास से किस तरह बड़ी से बड़ी शक्ति को झुकाकर उनके हृदय में राज किया जा सकता है। इसी शक्ति के बल पर गांधी जी ने न केवल भारतीयों के ह्रदय में राज किया है बल्कि सम्पूर्ण विश्व गांधी की जादूगरी से बच नहीं सका।

अपनी आत्मकथा 'सत्य के साथ मेरा प्रयोग' में गांधी लिखते हैं, *''बुरी संगत के प्रभाववश मैंने ब्राह्मण होकर भी माँस खाया, बीड़ी पीने के लिए नौकरों की जेब से एक –दो पैसे की चोरी की और पुरुष अहम के चलते बाल्यावस्था में अपनी पत्नी कस्तूरबा पर पूर्ण नियंत्रण जैसा मानसिक अत्याचार भी किया।''* निःसंदेह गांधी जी हमारी ही तरह साधारण थे और हमारी ही तरह सामान्य काम किए, गलतियाँ भी की, प्रायश्चित भी किया। लेकिन मनुष्यता, और सत्य के पालन ने उन्हें साधारण से असाधारण बना दिया।

शांति के लिए गांधी जी की पहल संघर्ष के साथ आया। डरबन के न्यायालय में पगड़ी उतारने जैसे अपमानजनक बात हो या प्रिटोरिया जाने के दौरान उन्हें प्रथम श्रेणी के कोच से आखरी श्रेणी के कोच में धकेले जाने जैसी आपत्तिजनक घटना य गांधी जी के कोमल एवं स्वाभिमानी मन को आहत किया। फलतः गांधी जी गोरों के रंग भेद के खिलाफ 'द ग्रेट मार्च' का नेतृत्व कर अहिंसक पथ प्रदर्शन किया और शांति दूत के नायक बन उभरे। इसके बाद 1915 में, भारत में वापिस आकर समाज सुधारक के रूप में देश में फैली अस्पृश्यता, जाति तथा धर्म के बंदिशों को दर किनारा करय राजनीतिक स्तर तक अहिंसा को प्रसारित कर सभी धर्मों के बीच भाईचारे व एकता पर जोर देकर शांति की स्थापना की। साथ ही सभी सामाजिक कुरीतियों में अहिंसा का प्रयोग करते हुए शांति स्थापित किया । आगे चलकर 'सत्य व अहिंसा' के सैधान्तिक हथियार को माध्यम बनाकर अंग्रेजों के विरुद्ध डांडी मार्च, नमक सत्याग्रह, असहयोग आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन छेड़कर शांतिपूर्ण तरीके से भारत को आजाद कराया। अपने इसी शांतिपूर्ण अगुवाई के कारण ही वे किंग मार्टिन लूथर, दलाई लामा, नेल्सन मंडेला एवं आन–सन–सु की प्रेरणा बने। 30 जनवरी, 1948 को नाथू राम गोडसे के क्रूर हाथों द्वारा उनकी हत्या कर दी गई।

आज महात्मा गांधी हमारे बीच नहीं है पर 73 वर्षों बाद भी, (1948 – 2021) उनके विचार– सार्वभौमिक भाईचारा, वैश्विक शांति

व सहअस्तित्व उतना ही प्रासंगिक है। आज भी वैश्विक स्तर पर हिंसा, एक दूसरे से आगे निकल जाने की प्रतियोगिता, मतभेद, बेरोजगारी, महँगाई तथा तनावपूर्ण माहौल व्याप्त है और यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि गांधी जी की शिक्षाएँ आज भी वैश्विक विवादों को खत्म करने का बल ध्दम रखती हैं। वास्तव में, अच्छाई पर बल देती हुई उनकी शिक्षा मानवीय मूल्यों की स्थापना करती हैं। इसीलिए हम आज भी अपनी समस्या के समाधान हेतु गांधी दर्शन की शरण में जा सकते हैं ।

गांधी जी के करिश्माई व्यक्तित्व का बखान करते हुए अल्बर्ट आइंस्टीन ने सच ही कहा था–*'आने वाली पीढियां, संभव है कि शायद ही यह विश्वास करें कि महात्मा गांधी की तरह कोई व्यक्ति इस धरती पर कभी हुआ था।'*

❖ **मुनिया– गांधी जी के बचपन का नाम है।**

स्रोत :

1. सत्य के साथ मेरा प्रयोग : आत्मकथा–एम.के.गांधी
2. मुनिया (अंग्रेजी पत्रिका)
3. अंतरजाल

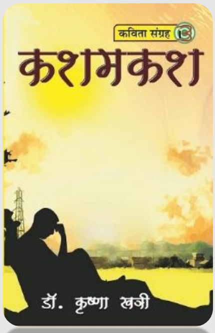

कशमकश

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-8-5

संस्करण : 2020, मूल्य : 250/-

लेख

बसंत पंचमी का महात्म्य

गोवर्धनदास बिन्नाणी 'राजा बाबू'
जिय नारायण व्यास कॉलोनी, बीकानेर
दूरभाष : 7976870397

श्रीमद्भगवत–गीता में प्रभु श्रीकृष्णजी ने स्वयं को 'ऋतुनाम् कुसुमाकरः' कहकर बसंत ऋतु की श्रेष्ठता प्रतिष्ठित की है। और जैसा हम सभी जानते हैं कि पतझड़ पश्चात बसन्त ऋतु में माघ शुक्ल पंचमी को वसंत पंचमी के अलावा श्रीपंचमी या ज्ञान पंचमी के नाम से भी जाना जाता है– इस दिन को ज्ञान और कला की देवी मां सरस्वती का जन्मदिवस माना जाता है। इसलिये इस दिन विद्या की देवी माता सरस्वती की पूजा बड़े ही उल्लास व उमंग के साथ की जाती है। मुझे भी बाल्यकाल में, माँ सरस्वतीजी की नित्य उपासना हेतु एक निम्न स्तुति बतायी गयी थी, जिसे मैं आज भी बिना भूले प्रतिदिन करता हूँ –

यया विना जगत्सर्वम्, शाश्वत जीवन मृतं भवेत्।
ज्ञानाधि देवी या तस्यै, सरस्वत्यै नमो नमः।।
यया विना जगतसर्वम्, मुकमुन्वत वत् सदा।
वागाधिष्ठात्री या देवी, तस्यै वाण्यै नमो नमः।।
सरस्वती महाभागे, विद्ये कमल लोचने।
विश्वरूपे विशालाक्षी, विद्याम् देही नमोस्तुते।।

आप सभी के ध्याननार्थ बता दूँ कि विश्व प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक मैक्स मूलर ने लिखा है– 'विश्व की पुस्तकालयों में प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद है।' इसी ऋग्वेद में उल्लेख है– 'सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते' अर्थात् देव–पद के अभिलाषी सरस्वती का आह्वान करते हैं।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

पुराणों के अनुसार सरस्वतीजी से सप्तविध स्वरों का ज्ञान प्राप्त होता है। इसके कारण ही उन्हें सरस्वती कहा जाता है अर्थात माता सरस्वतीजी को ज्ञान की देवी माना जाता है। इसलिये ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों ही सरस्वतीजी को पूजते हैं। प्रबुद्ध पाठक जानते ही होंगे हिंदू धर्म के अठारह प्रमुख पुराणों में से एक देवी–भागवत में भी सरस्वतीजी के बारे में विस्तार से बताया गया है–

आदौ सरस्वती पूजा कृष्णेन विनिर्मिता।
यत्प्रसादान्मुनि श्रेष्ठ मूर्खो भवति पंडितः।।

अर्थ– श्रीकृष्ण ने सबसे पहले माता सरस्वती के महत्व का वर्णन किया और कहा कि उनकी पूजा अवश्य की जानी चाहिए, जिसकी कृपा से मूर्ख भी विद्वान हो जाता है। माँ शारदे की अभ्यर्थना करने पर विद्या, ज्ञान, विवेक, बुद्धि की प्राप्ति होती है। इसलिये यह तो आप सभी को मानना ही होगा कि विद्वान व्यक्ति कुछ भी हासिल कर सकता है। इसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये एक ऐतिहासिक सत्य घटना आप सभी के साथ साँझा कर रहा हूँ। जो इस प्रकार है– 'हिन्दशिरोमणि पृथ्वीराज चौहान, जिन्होंने विदेशी इस्लामिक आक्रमणकारी मोहम्मद गौरी को 16 बार पराजित किया और उदारता दिखाते हुए हर बार जीवित छोड़ दिया, पर जब सत्रहवीं बार वे पराजित हुए, तो मोहम्मद गौरी ने उन्हें नहीं छोड़ा। वह उन्हें अपने साथ बंदी बनाकर काबुल अफगानिस्तान ले गया और वहाँ उनकी दोनों आंखें फोड़ दीं। यह समाचार जानने के बाद राजकवि चंद बरदाई हिन्दशिरोमणि से मिलने काबुल कैदखाने पहूँच, जब उनको दयनीय हालत में देखा तो उनके कोमल हृदय को गहरा आघात लगा और उसी वक्त उन्होंने गौरी से बदला लेने की योजना बना डाली। उसी योजनानुसार चंद्रवरदाई ने गौरी को अपने प्रतापी सम्राट हिन्दशिरोमणि की एक विलक्षण विद्या शब्दभेदी बाण (आवाज की दिशा में लक्ष्य को भेदनाद्ध) के बारे में बताते हुये आग्रह किया कि यदि आप चाहें, तो इनके शब्दभेदी बाण से लोहे के सात तवे बेधने का प्रदर्शन आप स्वयं भी देख सकते हैं। इस अनोखी विद्या के अवलोकनार्थ गौरी तुरन्त ही तैयार हो गया और उसने आनन फानन में अपने राज्य में सभी प्रमुख ओहदेदारों को इस कार्यक्रम को देखने

हेतु आमंत्रित कर दिया। निश्चित तिथि को दरबार लगा और गौरी एक ऊंचे स्थान पर अपने मंत्रियों के साथ बैठ गया। चूँकि हिन्दशिरोमणि और राजकवि ने पहले ही इस पूरे कार्यक्रम की गुप्त मंत्रणा कर ली थी इसलिये चंद्रवरदाई ने मोहम्मद गौरी से लोहे के सात बड़े–बड़े तवे निश्चित दिशा और दूरी पर लगवा देने का आग्रह किया तब गौरी ने राजकवि के निर्देशानुसार ही वे तवे लगवा दिये। इसके बाद दोनों आँखों से अन्धे पृथ्वीराजजी को कैद एवं बेड़ियों से आजाद कर बैठने के निश्चित स्थान पर लाया गया और उनके हाथों में धनुष बाण थमाया गया। इसके बाद राजकवि चंद्रवरदाई ने पृथ्वीराजजी के वीर गाथाओं का बखान करते हुए गौरी के बैठने के स्थान को चिन्हित करते हुये यानि पृथ्वीराज को अवगत करवाने हेतु निम्न बिरूदावली गायी–

"चार बांस, चौबीस गज, अंगुल अष्ठ प्रमाण।
ता ऊपर सुल्तान है, चूको मत चौहान।।"

अर्थात् चार बांस, चौबीस गज और आठ अंगुल जितनी दूरी के ऊपर सुल्तान बैठा है, इसलिए चौहान चूकना नहीं, अपने लक्ष्य को हासिल करो। इस तरह पृथ्वीराजजी को मोहम्मद गौरी की वास्तविक स्थिति का आंकलन करवा उन्होनें मोहम्मद गौरी कि ओर मुखातिब होकर निवेदिन किया कि मेरे प्रतापी सम्राट आज यहाँ आपके बंदी की हैसियत से उपस्थित हैं, इसलिए आप इन्हें आदेश दें, तब ही ये आपकी आज्ञा प्राप्त कर, अपने शब्द भेदी बाण का प्रदर्शन करेंगे। इस पर ज्यों ही मोहम्मद गौरी ने पृथ्वीराजजी को प्रदर्शन की आज्ञा का आदेश दिया, पृथ्वीराजजी को गौरी किस दिशा में बैठा है, ज्ञात हो गया और उन्होंने तुरन्त बिना एक पल की भी देरी किये अपने एक ही बाण से गौरी को मार गिराया। बाण लगते ही गौरी उपर्युक्त कथित ऊंचाई से नीचे धड़ाम से आ गिरा और उसके प्राण–पखेरू उड़ गए। उसके बाद चारों और भगदड़ और हा–हाकार तो मचना ही था सो मचना शुरू हो गया और इसी सब का फायदा उठाते हुये हिन्दशिरोमणि प्रतापी सम्राट पृथ्वीराजजी और राजकवि चंद्रवरदाई ने पूर्व निर्धारित योजनानुसार एक–दूसरे को कटार मार कर अपने प्राण न्योछावर कर दिये। आप सभी के ध्याननार्थ बता दूँ कि यह

आत्मबलिदान वाली घटना भी 1192 ई. को बसन्त–पंचमी वाले दिन ही हुई थी। उपरोक्त घटना से यह तो स्पष्ट हो गया कि विद्वान व्यक्ति कुछ भी हासिल कर सकता है। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट है कि बसन्त पंचमी वाला समय ज्ञानवान बनने के लिये संकल्पित होने का अवसर प्रदान करता है। चूँकि आजकल बसन्त पंचमी वाले दिन अनेकों जगह अनेकों प्रकार के आयोजन होने लग गये हैं इसलिये आप उमंग व उल्लास के साथ आयोजित होने वाले इन सांस्कृतिक कार्यक्रमों में अपना हुनर प्रदर्शित करने के अवसर का लाभ अवश्य उठायें।

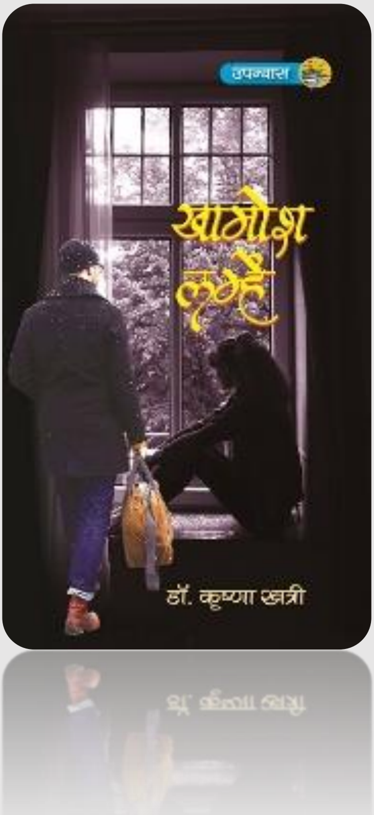

खामोश लम्हें

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-944444-6-6

संस्करण : 2020, मूल्य : 200/-

लेख

अमृतराय का साहित्यिक अवदान

डॉ. उर्मिला शर्मा

सहायक प्राध्यापक, अन्नदा महाविद्यालय, हजारीबाग, झारखंड –825301

अमृतराय विलक्षण प्रतिभा के धनी रचनाकार होने के साथ प्रेमचंद परम्परा के सच्चे उत्तराधिकारी व संवाहक थे। किंतु उनके कथाकार, उपन्यासकार, आलोचक, सम्पादक, नाटककार, व्यंग्यकार तथा प्रगतिशील आंदोलन को गति प्रदान करनेवाले प्रतिबद्ध कार्यकर्ता के रूप में सम्यक मूल्यांकन साहित्य समाज में नहीं हो सका है। उनको श्कलम का सिपाहीश एवं अंग्रेजी के कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकों के सृजनात्मक अनुवाद के लिये ही बार–बार स्मरण किया जाता है। साहित्य के नए पाठक एवं लेखक भी उनके इसी रूप को जानते हैं।

महान पिता के पुत्र के समक्ष अतिरिक्त चुनौतियां होती हैं। उसकी तुलना हमेशा पिता से की जाती है। उन्होंने यदि केवल श्कलम का सिपाहीश लिखा होता तो उन्हें प्रासंगिक रखने के लिये यह ही काफी होता। किन्तु वो तो इससे ज्यादा एक सम्पादक, अनुवादक, आलोचक, कथाकार भी थे। हिंदी साहित्य का मान वो, अभिमान वो, कलम का सिपाही वो, आदि विद्रोही वो, अग्निदीक्षा में तपा–निखरा वो, मुंशी प्रेमचंद का अमृत वो जिसने हिंदी साहित्य से लिया भुति कम और दिया बहुत ज्यादा।

अमृतराय की चर्चा सर्वाधिक प्रेमचंद की जीवनी 'कलम का सिपाही' के लिए की जाती है। 1962 ई. में प्रकाशित इस पुस्तक के लिए उन्हें 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार प्राप्त हुआ था। 'कलम का सिपाही' जीवनी नहीं बल्कि हिंदी–उर्दू स्वाधीनता आंदोलन का साहित्यिक दस्तावेज है। ततपश्चात उनकी चर्चा हॉवर्ड फास्ट के कालजयी उपन्यास 'स्पार्टाकस' के अनुवाद 'आदि विद्रोही' के लिए

की जाती है। पुनः उनकी चर्चा प्रेमचंद की लुप्तप्राय रचनाओं की खोज व अनुवाद के माध्यम से लोगों के समक्ष लाने के संदर्भ में कई जाती है। उन्होंने अपने पिता के पुस्तकों को पुनर्जीवित, उपलब्ध तथा प्रसारित करने का महती कार्य किया है। प्रेमचंद के कृतित्व के एक बड़े हिस्से को उन्होंने अपने हाथों सृजित कर पुनर्जीवित किया है। हिंदी के पाठक प्रेमचंद के 'सेवासदन' को उनका प्रथम उपन्यास मानते हैं जबकि इससे पूर्व चार उपन्यास उर्दू में लिखे जा चुके थे जिसे अमृतराय प्रेमचंद की शैली की हिंदी में ढालकर प्रकाश में लाये। उन्होंने प्रेमचंद की 56 कहानियों को उर्दू रिसालों से ढूंढकर हिंदी में 'गुप्तधन' के नाम से दो खंडों में छापा। प्रेमचंद के सैकड़ो लेखों व सम्पादकीय टिप्पणियों के संग्रह बनाकर 'विविध प्रसंग' नाम से छापा। प्रेमचंद के पत्रों को भी दो खंडों में 'चिठ्ठी–पत्री' के नाम से प्रकाशित किया।

'हंस' के दस वर्षों (1942–52) के सम्पादन काल में राजनीतिक प्रतिबद्धता के बावजूद उन्होंने इसकी अलग पहचान कायम रखी। अनेक दबावों के बावजूद उन्होंने अपने साहित्यिक मूल्यों को बनाये रखा। अमृतराय ने विदेशी भाषाओं की बहुमूल्य कृतियों का अनुवाद करते हुए 'बीज' या 'धुँआ' जैसे उपन्यास लिखते हुए समय की सुप्रसिद्ध पत्रिकाओं का सम्पादन करते हुए प्रगतिशील लेखक संघ और कम्युनिस्ट पार्टी के लिए काम करते हुए भी विमर्श तथा आलोचना के क्षेत्र में सदैव सक्रिय रहें। साथ ही साहित्य और राजनीति के गम्भीर सवालों से जब–तब टकराते रहें। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि 'फासिज्म पूंजीवाद की सबसे स्पष्ट और खूंखार शक्ल है।'

कम्युनिस्ट पार्टी के घोषित सदस्य होने के नाते 1950 में जब 'डिफेंस ऑफ इंडिया रूल्स' के अंतर्गत देश में कम्युनिस्टों की गिरप्तारी हो रही थी तब अमृतराय को भी गिरप्तार कर बनारस जेल भेजा गया। मार्क्सवाद के प्रति अटूट आस्था रखनेवाले व फासिज्म की खिलाफत का हिम्मत रखनेवाले हिंदी के महान लेखक थे अमृतराय।

प्रगतिशील लेखक संघ के माध्यम से प्रगतिशील चिंतन धारा को आगे बढाने, अपने समय के तमाम वैश्विक विचारधाराओं को हिंदी पाठकों के समक्ष ले आने, विदेशी भाषाओं की महत्वपूर्ण कृतियों का सहज हिंदी में अनुवाद करने के अलावा उन्होनें श्हंसश तथा श्नई

कहानीश पत्रिका का सम्पादन किया। इसके अलावा उन्होनें सात उपन्यास, आठ कहानी संग्रह, तीन नाटक, पांच हास्य–व्यंग्य संग्रह, पांच आलोचनात्मक पुस्तक, एक यात्रा वृत्तांत व एक संस्मरण लिखा जो उनके रचनात्मक व्यक्तित्व को विशालता प्रदान करते हैं।

हिंदी, उर्दू, बांग्ला व अंग्रेजी पर उनको असाधारण अधिकार प्राप्त था। हिंदी उर्दू पर अपना नजरिया स्पष्ट करते हुए उन्होंने 'A house divided' नामक पुस्तक अंग्रेजी में लिखी जिसमें उन्होंने हिंदी, ऊर्दू, हिंदवी पर अपने विचार वैज्ञानिक तरीके से रखा। उन्होंने उर्दूवालों को अरबी–फारसी तथा हिंदी वालों को संस्कृत का मोह त्यागने की सलाह दी। विचारधारा और साहित्य में उन्होंने शिविर बद्धता की सीमा को इंगित करते हुए लिखा, *'मेरा मन जैसा कुछ बना था वैसी शिविरबद्धता मेरे लिए कभी सम्भव नहीं हो पाई। पर इसका मुझे कोई खेद नहीं है क्योंकि मुझे लगता है कि अंततः अपना विवेक ही सबसे अच्छा जीवन सहचर होता है।'*

अमृतराय ने 1939 से लेकर 1947 तक 13 महत्वपूर्ण विदेशी कहानियों का अनुवाद किया। रशियन, फ्रेंच, चीनी, जर्मनी व अंग्रेजी भाषा की विशिष्ट कहानियों का अनुवाद उनके वृहद भाषाई ज्ञान का परिचायक है। उनकी यह पुस्तक 'नूतन आलोक' नाम से 1947 ई० में प्रकाशित हुई थी। 'कहानियां पढ़ चुकने के बाद' नाम से पुस्तक के अंत में एक टिपण्णी लिखी गयी जो इस पुस्तक की आत्मा है। यह कार्य उन्होंने तब किया जब साहित्य में अनुवाद तो क्या मूल रचनाएं भी नदारत थीं। अमृतराय अनुवाद करने के लिए अनुवाद नहीं करते थे बल्कि हिंदी समाज को जागृत करने एवं उसे वैश्विक संघर्ष और स्वप्न से जोड़ने के लिए विश्व की अनुपम कृतियों का अनुवाद करते थें। हॉवर्ड फास्ट उनके प्रिय लेखक थे दोनों के जीवन भी काफी हद तक एक दूसरे से मिलता जुलता है।

अमृतराय के कहानी संग्रह 'लाल धरती' की भूमिका में प्रसिद्ध साहित्यकार कृष्णचंदर ने बड़े स्पष्ट रूप में लिखा है– *'अमृतराय महज कहानी लिखने के लिए कहानी नहीं लिखते बल्कि कहानी लिखते जीवनी और समाज के, चरित्र एवं वर्गों के मसले रहते हैं, उनकी टक्कर रहती है और उस टक्कर से कुछ निष्कर्ष निकलता है। जीवनी और समाज के बारे में उनके एक जीवन दर्शन है जिसे अपनी कहानियों में लागू करते हैं।'* प्रख्यात आलोचक धनन्जय वर्मा

का मानना है कि *'अमृतराय की कहानियां जिंदगी की सिस्मोग्राफ प्रस्तुत करती हैं।'* आलोचक शम्भू गुप्त कहते हैं कि *'प्रेमचंद जहाँ आदर्श और यथार्थ के बीच संदेह के साथ यथार्थ की ओर कदम बढ़ाते हैं, वहीं अमृतराय यथार्थ से आरम्भ कर यथार्थ तक पहुँचते हैं।'* एक सांवली लड़की, पति–पत्नी, कटघरे, नक्सलवादी कहानियों में इसे यथार्थ रूप में देखी जा सकती है। इनकी कहानियों का कथ्य अत्यंत विशाल एवं सरल है। विश्वनाथ त्रिपाठी का कहना है कि *'अमृतराय का साहित्यिक व्यक्तित्व यशस्वी था, वे विज्ञापनी मानसिकता से दूर थे। अमृतराय आकर्षक व्यक्तित्व के युवक लगते थे। हरिशंकर परसाई ने उन्हें साहित्य का राजकपूर कहा है।'* उनके नाटकों के बारे में नाटककार राजेशकुमार कहते हैं कि *'अमृतराय ने नाटक से कोई समझौता नहीं किया। सत्ता से सीधा टकराने का रास्ता चुना।'*

यह बात उल्लेखनीय है कि अमृतराय द्वारा अनुदित बर्तोल्ड ब्रेख्त और शेक्सपियर के नाटक आज भी रंगकर्मियों का प्रथम चुनाव होता है। उनका नाट्य संग्रह 'आज अभी' के तीनों नाटक भिन्न–भिन्न मिजाज व अंदाज के हैं। एक अच्छा पुत्र, एक अच्छा संपादक, एक अच्छा प्रकाशक व एक अच्छा आलोचक इतनी सारी भूमिकाओं का वहन एक विलक्षण प्रतिभा का धनी व्यक्ति ही निभा सकता है। अमृतराय प्रेमचंद के पुत्र होने के नाते बड़े लेखक नहीं हैं वरण वे अपने खान रचनाओं, अनुवादों के लिए जाने जानेवाले, मार्क्सवाद के प्रति अटूट आस्था रखने की कीमत चुकाने वाले हिंदी के बड़े लेखक हैं।

सन्दर्भ :

- www.janchauk.com, संजय गौतम, साहित्य के आईने में अमृतराय, 17 अक्टूबर–2021
- समता मार्ग,विजय रॉय, 26 सितंबर–2021
- **www-samalochan.com**, वह गर्व भर मदमाता जीवन, रमेश अनुपम, 30 अगस्त–2021
- www.m.hindi-webdunia-com, लमही पत्रिका का अमृतराय जन्मशताब्दी, डॉ शुभा श्रीवास्तव

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

यात्रा वृत्तांत

पारसनाथ की यात्रा

रोहित यादव
शोध छात्र, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

भारत की प्राचीनतम पहाड़ियों में से एक है पारसनाथ की पहाड़ी। गिरीडीह में आने से पहले पार्श्वनाथ का नाम तो सुना था परंतु इस पहाड़ी का नाम नहीं। इस पहाड़ी के नाम से मानो ऐसा लगता है की जैनियों के 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के नाम पर ही इस पहाड़ी का नाम पारसनाथ रखा गया हो। बाकी सत्य क्या है यह तो मुझे भी नहीं पता।

ऐसी मान्यता है कि जैन धर्म के लगभग 20 तीर्थंकरों ने यहां निर्वाण प्राप्त किया। इन पहाड़ियों का जब से नाम सुना था मन में अभिलाषाएं हिलोरे ले रही थी इन्हें देखने की। परंतु उचित समय नहीं आ रहा था। वह दिन भी आया जब हम इन पहाड़ियों की ओर रुख किए। इस यात्रा में मैं अकेला नहीं था, शामिल थी तीन मूर्तियां। तीनों मूर्तियां पारसनाथ की यात्रा को लेकर व्याकुल थी। अचानक पारसनाथ जाने की योजना बनाई गई। रात भर नींद नहीं आई,मन में उत्साह था यात्रा को लेकर। चौदह जनवरी सन् दो हजार इक्कीस को ट्रेन से हम तीनों हजारीबाग रेलवे स्टेशन से पारसनाथ पहुंचे। मानो ऐसा लग रहा था की हम तीनों किसी दूसरी दुनिया का रुख कर रहे हैं तीनों आपस में बात करके मन ही मन प्रफुल्लित हो रहे थे करीब सुबह पांच बजे हम तीनों सवारी गाड़ी से यात्रा का आनंद लेते हुए मधुबन पहुंचे।

यहां पहुंचने के बाद हम तीनों को लगा कि हम कहां आ गए परंतु बाद में स्पष्ट हुआ कि हम तीनों अपने गंतव्य स्थल से लगभग दस किलोमीटर की दूरी पर थे हमारा गंतव्य स्थल था पारसनाथ की पहाड़ी की सबसे ऊंची चोटी जिसे जैन धर्मावलंबी सम्मेद शिखर कहते थे फिर हुआ क्या हम तीनों के मन में शिखर पर जाने की व्याकुलता

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

बढ़ने लगी यह सब प्रक्रिया वैसे ही हो रही थी मानो जैसे सागर में भूचाल आ गया हो। मन में आस शिखर पर जाने की।

हम तीनों ने बिना सोचे समझे पैदल यात्रा प्रारंभ की। क्या प्रकृति थी क्या सुंदर छटा थी वह मनोहर दृश्य कितना मनोरम था प्रकृति कितनी हरी भरी थी जो मन को अनायास आकर्षित कर रही थी हर वृक्ष के नीचे सेल्फी लेने का मन हो रहा था प्रकृति का हर दृश्य लुभावना था इन सभी दृश्यों को निहारते हुए हम आगे की ओर बढ़ रहे थे जैसे–जैसे आगे बढ़ते जा रहे थे पैर जवाब दे रहा था रास्ते में लिखे आदर्श वाक्य विरक्ति की ओर ले जा रहे थे गंतव्य स्थल मानो मृगतृष्णा बन गया था गंतव्य स्थल से दूर थे परन्तु लगता था की हम तो पास आ गए हैं। सहयात्री ढॉढस बधा रहे थे कि अब तो आ गए हो बस कुछ ही दूर है यही तो दिख रहा है सामने। परंतु जैसे–जैसे आगे बढ़ते मानो ऐसा प्रतीत हो रहा था की लक्ष्य हमसे दूर भाग रहा हो। भरी जवानी में बुढ़ापे का एहसास हो रहा था पैर आगे जाने को गवाही ही नहीं दे रहे थे। यह सब वैसे ही हो रहा था जैसे परूवा बैल। अब हम लाठी का सहारा लिए और फिर धीरे–धीरे आगे बढ़े करीब करीब साढ़े बारह बजे शिखर पर पहुंचे परंतु अब तक जो आकांक्षाएं मन में सागर की तरह हिलोरे ले रही थी सब मर चुकी थी क्योंकि शरीर निष्क्रिय हो गया पांव शिथिल पड़ चुके थे जो प्रकृति हमें लुभा रही थी, अब वह असुंदर सी प्रतीत हो रही थी शिखर से चारों ओर धुआं ही धुआं नजर आ रहा था वही कुछ देर तक विश्राम किया यहां से लगभग सभी चोटियां दिख रही थी सभी चोटियों पर मंदिर दिख रहे थे परंतु अब तक हम ऐसी अवस्था में पहुंच चुके थे की सभी चोटियों पर जाना असंभव सा प्रतीत हो रहा था परंतु हम मुख्य मंदिर(पार्श्वनाथ), जल मंदिर आदि पवित्र स्थलों पर गए परंतु अब समय कम बचा था वापस भी आना था मन की जिज्ञासा शांत हो रही थी।

इस समय अब कोई भी वस्तु हम लोगों को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर रही थी अब मन में एक भी इच्छा नहीं थी बस यही अभिलाषा थी कि किसी तरह वापस चलें और ऐसा ही हुआ जैसे ही हम लोगों ने पहाड़ी से नीचे की ओर उतरना प्रारंभ किया और फिर वहीं आकर रुके जहां से यात्रा प्रारंभ की थी।

कृति–चर्चा

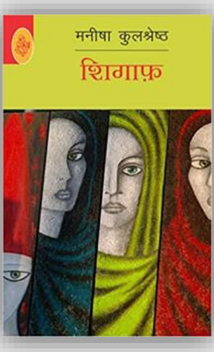

कश्मीरियों की घुटन और छटपटाहट की जीवंत अभिव्यक्ति : शिगाफ़

डॉ. शिराजोद्दीन
फ्लैट नं. 301, हैप्पी होम्स प्लाजा अपार्टमेंट, चिंतलमेट, हैदराबाद
संपर्क : 8880293329, ईमेल : drshirajoddin@gmail.com

मनीषा कुलश्रेष्ठ का बहुचर्चित उपन्यास शिगाफ कश्मीरियों की पीड़ा तथा वहां के लाखों लोगों के दर्द, घुटन तथा छटपटाहट को अभिव्यक्त करता है। शिगाफ यानी 'दरार' जो कश्मीरियत की रूह में स्थाई तौर पर पड़ गई है। इस दरार को भरने के लिए उपन्यास के मुख्य पात्र पत्रकार जमात और अमिता दोनों लगातार प्रयास करते हैं। इस उपन्यास को पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है कि कई संवेदनाएं मिलकर एक कर दी गई हो। कश्मीर की पृष्ठभूमि पर लिखा हुआ इस उपन्यास का कथानक अनेक अनछुए पहलुओं को उजागर करता है। विशेष रूप से मिलिटेंट्स और मिलिट्री से शोषित हजारों लोगों, परिस्थितियों और विभिन्न समस्याओं का चित्रण करता है। साथ ही विस्थापन तथा आतंक में जी रहे समाज की अभिव्यक्ति भी है। लेखिका

खुद लिखती हैं– *"विस्थापन का दर्द महज एक सांस्कृतिक, सामाजिक विरासत से कट जाने का दर्द ही नहीं है बल्कि अपनी खुली जड़े लिए भटकने और कहीं जम न पाने की भीषण विवशता भी है, जिसे अपने निर्वासन के दौरान सेंसबेस्टियन स्पेन में रह रही अमिता लगातार अपने ब्लॉग में लिखती रही है।"* (पृ. आवरण)

उपन्यास की शुरुआत अमिता के ब्लॉग से शुरू होकर, यासमीन की डायरी, मानव बम जुलेखा, अलगाववादी नेता वसीम, सैनिक शांतनु आदि के माध्यम से इसका कथानक पाठक को कश्मीर से रूबरू कराता है। इस उपन्यास में सात भाग हैं। जैसे– ला मंचा की राह पर, वापसी, चिनार की दो पत्तियां, वार विद इन या वार विद हेल्ड, जुलेखा का मिथक, आत्मालाप और बदलते मौसमरू शांति की अफवाह। उपन्यास का हर एक भाग और कथानक महत्वपूर्ण है। जोकि पाठक को हर मोड़ पर बांधे रखते हैं। विशेष रूप से इस उपन्यास के हर भाग का कथानक अलग–अलग होकर भी एक ही है।

उपन्यास की नायिका अमिता एक विस्थापित कश्मीरी हिंदू परिवार से है। जो अपने अध्ययन और रोजगार की तलाश में एक साल से स्पेन के पांपा लोना के निकट बसा एक छोटा शहर सेंस बैरिस्टन में रह रही है। अपने ब्लॉग 'अमिता इन स्पेन ब्लॉग स्पॉट डॉट कॉम और रोड टू ला मंचा ब्लॉग स्पॉट डॉट कॉम' के माध्यम से कश्मीर की स्मृतियों, वहां पर हो रहे शोषण व अत्याचार की खबर पूरी दुनिया को परिचित कराती है। जिस पर कश्मीर और भारत से जुड़े लोग तरह–तरह से अपनी प्रतिक्रियाएं देते हैं। स्पेन में अमिता की मुलाकात इयान बॉन्ड से होती है। वह अमिता को फ्रैंको की तानाशाही, जीवन मूल्यों में आई गिरावट, स्पेन का युद्ध, बास्क संघर्ष आदि अनेक घटनाओं का जिक्र करते हुए अपने भोगे हुए यथार्थ और कश्मीर की सच्चाई को लिखने के लिए प्रोत्साहित करता है। इयान कहता है– *"तुम बेरोजगार नहीं हो। तुम्हें दिक्कत ना हो मैं ध्यान रखूंगा। अभी तो अनुवाद के लिए मैं तुम्हें कुछ मेडिकल जर्नल्स भेज रहा हूं। यह जरूरी हैं। तुम विस्थापन के अपने अनुभवों पर किताब कब लिखना शुरू करोगी? देखो, अनुवाद हर कोई करता है। तुम्हारे पास अपनी शानदार भाषा है। दूसरे का आधा–अधूरा सच नहीं, अपना भोगा पूरा–पूरा सच है। उसे लिखो, पूरी तैयारी के साथ लिखो। हो*

सके तो वहां लौटकर, अपनी जमीन पर जाकर लिखो।" (पृ.11) लेकिन अमिता सेंसबेस्टियन में अपना अध्ययन पूरा करने के दौरान भारत लौटना नहीं चाहती। दरअसल अमिता यहां की गंभीर परिस्थितियों से परिचित है। इसीलिए वह स्पेन में ही रहकर अपनी आगे की पढ़ाई और वहीं पर नौकरी करना चाहती हैं। कभी–कभी उसे यह डर भी खाया जाता है कि यदि नए कोर्स में एडमिशन न मिले और कोई नौकरी न मिलने पर भारत लौटना पड़ेगा। अपनी इस चिंता को अपने ब्लॉग पर लिखती है– *"मुझे चिंता है, जल्दी ही अगर कोई नया कोर्स और नौकरी नहीं पकड़ी तो लौटना होगा। लौटने कि मुझे जल्दी नहीं है। सच पूछो तो मेरा मन ही नहीं है... मुझे नहीं लौटना है भारत। एक ऐसा देश, जहां धर्म और आस्था के नाम पर किसी को भी बरगलाया जा सकता है।"* (पृ.14)

अमिता द्वारा लिखे गए इस ब्लॉग को पढ़कर भारत से एक व्यक्ति अपनी प्रतिक्रिया देता है–*"भारत से बाहर रहकर इतना नकारात्मक मत सोचो.. तुम अपने न लौटने की इच्छा को इस तरह जस्टिफाई नहीं कर सकती। माना हम ज्यादा धर्म और आस्था केंद्रित राजनीति का शिकार होते जा रहे हैं, लेकिन हालात अभी हमारे हाथ ही में हैं।"* (पृ.14) इन दोनों के विचार समकालीन परिस्थिति और व्यवस्था को रेखांकित करते हैं। लेखिका मनीषा कुलश्रेष्ट ने कथानक को बड़ी रोचकता से प्रस्तुत किया है।

स्पेन की पतली गलियों को भारत के धार्मिक शहरों से तुलना कर फिर से एक बार भारत लौटने की उम्मीद को जगाता है। फिर कट्टरता, नस्लवाद, कश्मीर की सामाजिक स्थिति आदि का चेहरा इस उम्मीद को धुंधला कर देता है। साम्प्रदायिकता, कट्टरता, नस्लवाद, अराजकता आदि की चपेट में पूरी दुनिया है। इसका एक उदाहरण स्पेन की गलियों में दीवारों पर स्वास्तिक चिन्ह और प्रवासियों के विरोध में लिखे हुए नारे हैं। जोकि कट्टरता और नक्सलवाद को दर्शाते हैं। इन सभी दृश्यों को देखकर अमिता कहती है– *"मुझे फिर कश्मीर याद आ गया। केवल हम ही नहीं है जो पीछे की तरफ लौट रहे हैं, बर्बर युग में। धर्म, नस्ल, रंग और विचारधारा के नाम पर पूरी दुनिया जल रही है। कौन कहता है कि यह तरक्की कर चुके हैं या हम तरक्की के दौर से गुजर रहे हैं?"* (पृ.16) वर्तमान समय में जितनी प्रगति, आधुनिकता या विज्ञान का आविष्कार हुआ है, उतना ही धर्म,

कट्टरता, नक्सलवाद, क्षेत्रवाद आदि के कारणों से सामाजिक जीवन में गिरावट आई है। इसीलिए उपन्यास का कथानक कहीं न कहीं हताश दिखाई देता है। *"हम तो बेहतर थे जब समूह में रहते थे, नदी, पहाड़, पेड़ और आसमा को पूजते थे और प्राकृतिक विपदाओं को शैतान का स्वरूप मानकर उसे भी खुश करने के लिए जाने क्या–क्या करते थे। नस्ल की शुद्धता तब मसला थी ही नहीं। मसला था, तमाम विषमताओं के बावजूद मनुष्य मात्र के अस्तित्व के जीवित रहने का। आए दिन की प्राकृतिक विपदाएं, जीने की दुश्वारियां, जंग की फुर्सत ही नहीं देती! दो समूह घिरते भी होंगे मगर धर्म या नस्ल या रंग या विचारधारा के नाम पर नहीं। वह लड़ाई वजूद की होती होगी।"* (पृ. 16)

उपन्यास के पहले चरण में लेखिका ने कई जगह पर कथानक की दुविधाजनक स्थिति को भी दिखाया है। वह कभी अपने विस्थापन के दर्द को महसूस करता है, तो कभी पुनर्वास की इच्छा लेकर मौजूदा हालात पर चिंतित। इस बात को अमिता और अश्वत्थ के वार्तालाप से जाना जा सकता है। "श्रीनगर के भीतरी हिस्सों में बसे हिन्दू मोहल्ले के बहुमंजिला पुराने मकानों की पक्तियां याद आ गई थीं, जहां जिन्दगी चहकती थी। श्रीनगर अपने बाहरी घेरे में हसीन वादियों, डल झील के विस्तार और बर्फ ढकी पहाड़ियों का मुकुट पहने खूबसूरत लगता था मगर इसके भीतरी घेरे में एक दो या तीन मंजिला इमारतों का ऐसा सिलसिला था जो तंग रास्तों, संकरी गलियों में फैला हुआ था। नीचे बाजार और ऊपर मकान की तर्ज पर। झेलम इसी घनी आबादीवाले भीतरी शहर के बीच नौ पुलों के नीचे से बहती है। मेरी दादी का पुश्तैनी घर हब्बकदल में था। आज वहां जले हुए मकानों की कतारों की कतारें हैं।" (पृ.19)

उपन्यास में ऐसे कई पात्र जुड़ते चले जाते हैं, जिनके माध्यम से कश्मीर की सामाजिक समस्या से अवगत होते हैं। एक तरफ विस्थापन का दर्द सह रहा हिंदू समाज है तो दूसरी तरफ पूरा कश्मीर आतंकवाद और अलगाववाद से भी परेशान है। वसीम एक ऐसा ही पात्र है जो फौज को हटाए जाने की और विस्थापित हिंदुओं को फिर उधमपुर के करीब बसाने की बात करता है। साथ ही कश्मीरी मुसलमानों के हुमन राइट्स की बात करता है। लेकिन सवाल ये भी उठता है कि जिस वक्त एक बड़ा समुदाय यहां से पलायन कर रहा

था, उस वक्त कोई नेशनल हुमन राइट्स कमिशन की बात नहीं कर रहा था। मनीषा कुलश्रेष्ठ ने वसीम को इसी संदर्भ में कटघरे में खड़ा किया है। वह केवल एक समुदाय के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करता है। यही वो वसीम है, जो सन 1990 से 1995 के बीच कई निहत्थे कश्मीरी हिंदुओं को मारने का एक बड़ा स्कोर बनाया था। आज वह मानव अधिकार की बात करता है, तो वह एक हास्यास्पद ही कहलायेगा। अतरू उपन्यास का कथानक कभी गंभीर विषय को लेकर चिंतित दिखाई देता है, तो कभी साधारण। इसमें कई गंभीर सवाल हैं, जिसको लेखिका ने मुखरता से उठाया है।

अमिता एक तरफ अपने ब्लॉग के माध्यम से कश्मीर की समस्या और वहां के हालात पर सारी दुनिया को परिचित कराती है। दूसरी तरफ वह अपने निजी जीवन में कामकाज की तलाश में भी भटकती। इयान बॉन्ड से मिलकर आर्थिक समस्या कुछ हद तक दूर होती है। दरअसल इयान बॉन्ड अमिता को अनुवाद का काम देता है। अपने काम के संदर्भ में वह इयान के साथ मेड्रिड चली जाती है। वहां के अनुभव को अमिता इस प्रकार लिखती है– *"रोड टू ला मंचा मैं बहुत उत्सुक हूं ला मंचा के सफर और इयान के साथ को लेकर।"* (पृ.33)

इयान बॉन्ड के साथ काम करते अमिता उससे मन ही मन में प्यार करने लगती है। और इयान भी इससे आकर्षित होता है। जब वे दोनों फ्लेमेंको डांस करते हैं तब जिन्हें आंखों ही आंखों में प्यार हो जाता है। इस अनुभव को अमिता इस प्रकार अभिव्यक्त करती हैं– *"हां मैं प्यार में पड़ने वाली हूं अभी इसी वक्त। उसने अपना हाथ मेरी कमर में डाल दिया और चिकने फर्श पर टैप किया और मुझे हल्का–सा उछाल लेकर घुमा दिया। मैं अप्रस्तुत थी इसके लिए। पर मेरी देह... सुख से भर गई थी। घूमने के दौरान उस पल के साथ में अंश में ही मुझे पता चल गया कि बहुत दिनों से कब्जा किए बैठे विषाद ने मेरे मन को आज खाली कर दिया था। मेरे चक्कर खत्म करने से पहले ही मेरा चेहरा उसके चेहरे से सटा था।"* (पृ.44) अंततः 26 जनवरी 2005 को अमिता बैठे–बैठे भारत लौटने का विचार करती है। तीन फरवरी को अमिता भारत लौट आती है। पालम एयरपोर्ट से अपने घर की तरफ जाते समय अमिता के मन में अनेक नकारात्मक विचार आते हैं। वह कोशिश करती है कि ऐसे विचार न आए। जिसमें अपने पिता

का अकेलापन, मां की मृत्यु, इयान बंड के साथ संबंध आदि–आदि। जब वह रसोई में आ कर देखती है, तो बहुत–सा सामान जो श्रीनगर से आते समय बांधा था, अब भी बिनखुला ही था। मां की सिलाई की मशीन, पुराने कालीन और कुछ संदूक। दरअसल अमिता का परिवार आतंकवादी हमले और विस्थापन का दंश सहते हुए श्रीनगर से दिल्ली आ गया था। इस बात को इस मार्मिक वाक्य से समझा जा सकता है– *"मां के मरने के तेरह दिन होते ही पापा ने हमारा हाथ थामे और हम दिल्ली आ गए।"* (पृ.67) जिस समय अमिता का परिवार कश्मीर छोड़ा था, उस समय अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा था। हालात सुधरने के इंतजार में जब वे कश्मीर से जम्मू आ जाते हैं, तो यहां का तापमान सारी हदे तोड़ चुका था। मजबूरन इन्हें लॉज में रहना पड़ा। लेकिन लॉज में रहना इतना आसन थोड़ी न था? आर्थिक तंगी के कारण लॉज का किराया महंगा पड़ रहा था। अंततः लॉज छोड़कर इस परिवार को किराए के घर में रहना पड़ा। जिसमें मकान मालिक से ही अमिता को यौन हिंसा का शिकार होना पड़ा। *"मैं बाथरूम में नहा रही थी, बल्कि नहा चुकी थी और अपने कपड़े पहन रही थी। कुर्ता आधा मेरी बांह में था, आधा गर्दन में और मुंह ढका हुआ था कि अचानक मुझे अपनी छातियों पर गुनगुने हाथ महसूस हुए... मैं लगाकर चीखी। कुर्ता हटाया तो मकान मालिक सामने था। उसने मेरा मुंह दबोच दिया था।"* (पृ.69) अतीत की स्मृतियों के साथ अमिता को दिल्ली लौटे डेढ़ महीना बीत चुका था। अब वह कश्मीर पहुंचकर कश्मीर समस्या, विस्थापन, आतंकवाद, अलगाववाद, इंडियन आर्मी आदि विषयों पर किताब लिखना चाहती थी। कश्मीर जाने की तैयारी में वह दिल्ली के पालिका बाजार में कुछ सामान खरीदी के लिए जाती है। वहां उसे कश्मीरी सेल्स गर्ल नसीम में मिलती है। नसीम की कहानी भी चुनौतियों और संघर्षों से भरी है। दरअसल नसीम तलाक के बाद अपने बेटे को लेकर रोजगार की तलाश में दिल्ली आई थी। अंततः जिस दुकान में सेल्स गर्ल का काम करती थी, उसी की दूसरी बीवी बनकर अपने बेटे के लिए जीती है।

इधर अमिता दिल्ली से श्रीनगर पहुंच जाती है। वहां वजीर के साथ यूनिवर्सिटी गेस्ट हाउस की तरफ चलते समय कश्मीर के हालात पर बात करती है। ऐसा लगता है जैसे बरसों बाद कश्मीर बदल गया है। वजीर अमिता को कश्मीर के बारे में बताता है। इस

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

वक्त कश्मीर को चारों तरफ से पैसा मिल रहा है, आर्मी, सरकार, मिलिटेंसी, सऊदी अरब, एनजीओ आदि से। वजीर कहता है– *"बदाम आने का लंबा चौड़ा कारोबार फैला हो तो कौन अमन चाहे? न मिलिटरी, न मिलिटेंट। एनजीओ की मुफ्त रोटी... सऊदी अरब से मिलता शोरबा...। किसको भुखमरी से लिपटा अमन चाहिए?"* (पृ.85) अमिता यूनिवर्सिटी आने के बाद एनजीओ द्वारा आयोजित कश्मीरी स्त्री और मानव अधिकार संबंधित एक सेमिनार में शामिल होती है। फिर वहां सोशियोलॉजी की प्रोफेसर आयशा का वक्तव्य सुनकर आश्चर्य चकित हो जाती है। आयशा के वक्तव्य में कश्मीर का यथार्थ था और हर दिन विधवाओं की बढ़ती संख्या, फौज और उग्रवादियों से मिलजुल कर किया गया हमला। शोषण–अत्याचार से जूझती हुई स्त्रियां आदि थीं। अमिता इनके वक्तव्य से प्रभावित होकर इनसे मिलती है। स्त्रियों की स्थिति पर चर्चा करते हुए आयशा कहती है– *"कश्मीर के बाहर जाकर तुम्हारी औरतें एक हद तक आजाद हो गई हैं। हमारी कश्मीरी औरत वहीं रहीय बल्कि पिछड़ गई।"* (पृ.87) अतः उपन्यास जैसा–जैसा बढ़ता है, वैसे–वैसे कथानक में रोचकता आती है और नई–नई कहानियां जुड़ती चली जाती हैं। इसी क्रम में अमिता की मुलाकात रहमान सर से होती है। रहमान सर अपनी बेटी यासमीन की मृत्यु के बारे में बताते हैं और उसकी डायरी अमिता को देते हैं। दरअसल यासमीन अमिता की बचपन की दोस्त थी। यासमीन उस डायरी में अपने प्रेम, अलगाववाद, सामाजिक कट्टरता, आतंकवाद आदि अनेक घटनाओं का उल्लेख करती है। *"अब्बू, फिर कश्मीर की तारीख में... ऐसा क्या हुआ कि इस अमन पसंद तहजीब में... हिंदू और मुसलमान के रिश्तो में ये शिगाफ (दरार) आ गया?"* (पृ.97) डायरी में उद्धृत ऐसी–ऐसी घटनाएं थीं, जोकि पाठक को झकझोर कर देती हैं। एक समय में कश्मीर में कट्टरता चरम सीमा पर थी। कॉलेज जाती हुई लड़कियां लगातार एसिड का शिकार हो रही थी। कश्मीर में कट्टरपंथियों ने समाज में धर्म का आतंक फैला रखा था। यासमीन भी कॉलेज जाना चाहती थी, लेकिन हालात को देख कर उसके अब्बू भी चिंतित थे। एक दिन यासमीन की माँ बाजार जाने से पहले यासमीन को पूछती है– *'कैसा बुर्का लाऊं यासमीन!' दालान में बैठे यासमीन के पिता जी कहते हैं– "कफन कैसा भी हो, लाश को क्या फर्क पड़ता है!"* (पृ.98) कश्मीर में आए दिन कट्टरवाद और आतंकवादी

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

घटनाओं से सामाजिक जीवन तहस–नहस हो रहा था। लोग अपनी जिंदगी घुट–घुट कर जी रहे थे। हालांकि कुछ खुले विचारों वाले लोग भी थे। लेकिन धर्म, कट्टरता, आतंकवाद आदि के सामने सब नतमस्तक थे। लड़कियां पढ़ना चाहती थी, लेकिन परिस्थितियों के कारण पढ़ नहीं पाती थी। *"अब्बू, मुझे चिढ़ है, इस दहशत गर्दी से... मेरा दम घुटता है। मुझे दिल्ली में, हॉस्टल में भेज दो। मेरे बहुत से दोस्त चले गए हैं, वहां वजीफे पर पढ़ने।"* (पृ.99) अतः यास्मीन की डायरी कश्मीर के कई राज खोलती है।

वजीर समय–समय पर अमिता को अवगत कराता है कि कश्मीर की स्थिति पहले जैसी ही है। बदलते वक्त के साथ लड़के–लड़कियां दोस्त बनना चाहते हैं। लेकिन पता नहीं कौन 'दोस्त' है कौन 'इनफॉर्मर'। अमिता अपनी किताब के सिलसिले में कई लोगों से मुलाकात करती है। जब वह नौशाबा से मिलती है तो कट्टरता पर चर्चा करती है। नौशाबा जिन्होंने पहली बार बुर्के के फरमान के खिलाफ मैगजीन में लिख कर एक मिसाल कायम की थी। इन्होंने कश्मीर की पहली फीमेल मैगजीन 'ग्रेस' भी निकाला। इसमें उन्होंने कश्मीरी औरत की हिम्मत के साथ–साथ उसकी आधुनिकता एवं जागरुकता को भी चित्रित किया। इसी क्रम में अमिता पत्रकार जमान से मिलकर अलगाववादी नेता वसीम तक पहुंचना चाहती थी। कई बार जमान से मिलकर इंडियन आर्मी पर चर्चाएं की। जमान आर्मी द्वारा किए जाने वाले शोषण के बारे में कहता है– *"मैं फौजी गाड़ियों के चक्कों के नीचे पिसते अवाम को भी देखता हूं। एक तरफ ऑपरेशन सद्भावना और ऑपरेशन मित्रता है, दूसरी तरफ कटते जंगल और बलात्कार हैं। ये पूरा खेल बहुत आसान नहीं है। बेगुनाहों के एनकाउंटर देखे हैं। कस्टोडियल मौतें देखी हैं। मैंने कोर्ट में बेगुनाहों की जिंदगी तबाह होते देखी है।"* (पृ.152)

अमिता अवंतीपुर गांव से लौटकर यह अनुभव पाती है कि कश्मीरी समाज कभी अलगाववाद से परेशान है, तो कभी सीमा सुरक्षा बल फौज से, कभी एंटी इनसरजेंट्स लोकल पुलिस से। कुछ लोग दहशत गर्दी के मारे हैं, तो कुछ लोग मिलटरी की ज्यादतियों से। इसी के चलते हैं यासमीन की डायरी में जुलेखा की कहानी भी रोचक है। जुलेखा सगीर की प्रेम दिवानी थी। वह सगीर के कहने पर एक पार्सल को लेकर अवंतीपुर के खंडहर में चली जाती है और वहां पर

ब्लास्ट में उसकी मौत हो जाती है। अंततः अमिता यासमीन की डायरी लेकर वसीम से मिलती है। वह उसे देना चाहती है। *"यह डायरी है यासमीन की। यह किसी फलसफे... विचारधारा, लड़ाई या कहानी की किताब नहीं है। इसमें तुम हो। यह आत्मकथा है, अधूरी सी। उसकी, जिसे तुम ख्वाब की तरह भूल गए थे... मगर वह जिंदा थी। अपनी पूरी जीने की ताकत के साथ मिलिटेंसी और मिलिटरी के बीच पिसती एक आम कश्मीरी औरत की तरह।"* (पृ. 213)

अमिता अपनी किताब लगभग पूरी कर चुकी थी। अमिता का हर किसी से मिलना एक नया अनुभव देता था। शुरुआत में वजीर से मिलकर यहां की हालात पर चर्चा–परिचर्चा करना, प्रोफेसर आयशा से मिलकर मुस्लिम महिलाओं की दयनीय स्थिति, यासमीन की डायरी पढ़कर कट्टरता, अलगाववाद, आतंकवाद, इंडियन मिलिट्री से परिचित, शांतनु से मिलकर एनकाउंटर्स की जानकारी, पत्रकार जमान से मिलकर वहां के हालात से रूबरू तथा 8 अक्टूबर 2005 को आए भूकंप का जिक्र आदि अनेक घटनाओं को लेकर अपनी किताब मुकम्मल करती हैं। अतः मनीषा कुलश्रेष्ठ ने इस उपन्यास के कथानक को बड़ी सच्चाई और रोचकता के साथ प्रस्तुत किया है।

शेखर जोशी की कहानियों में
हाशिये का समाज

इबाहुन मॉन

आईएसबीएन : 978-81-945460-6-1
संस्करण : 2020, मूल्य : 200/-

कृति–चर्चा

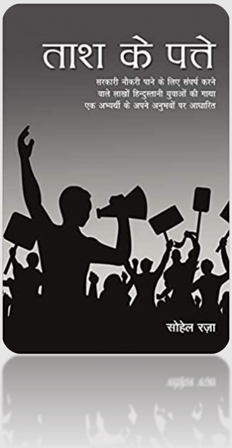

जीवन में लक्ष्य साधने का हुनर सिखाते ताश के पत्ते

ममता जयंत
मयूर विहार–3, दिल्ली

लेखक सोहेल रजा जी वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय में सहायक अनुभाग अधिकारी हैं, सोहेल जी इसके लिए विशेष रूप से बधाई के पात्र हैं कि वे साहित्य की दुनिया में उपन्यास से कदम रखते हैं! उपन्यास 'ताश के पत्ते' की विषय वस्तु का आधार देश में बढ़ती प्रतिस्पर्धा और बेरोजगारी से जूझते अथवा सरकारी नौकरी पाने के लिए संघर्ष करने वाले लाखों हिन्दुस्तानी युवाओं की कहानी है जिसका लेखक ने मार्मिक चित्र खींचा है। कहानी की भाषा पर लेखक का पूर्ण अधिकार है वे अनुभूति की अभिव्यक्ति सारगर्भित ढंग से करने में सफल रहे हैं! कहानी भावों और विचारों से इस प्रकार गुँथी हुयी है

कि पाठक के मानस को तनिक भी बोझिल नहीं होने देती शुरू से अन्त तक कहानी की रोचकता और सरसता समानांतर बनी रहती है। उपन्यास की भूमिका में वे लिखते हैं– *ये 'असंभव' शब्द जो हम युवाओं के लिए कभी असंभव था ही नहीं, कु–व्यवस्था का साया पाकर हमारे लिए असंभव हो जाता है। लेकिन वो बेरोजगार वाली गाली जब मन में कहीं लगती है तो मेहनत, तपस्या और लगन से यह 'असंभव' शब्द भरभरा के ढह जाता है!*

असफलताओं को ढहाने की ऐसी उम्मीदें और लक्ष्य तक पहुँचने का जज्बा है सोहेल जी के पास।

कहानी की शुरुआत एक परीक्षा के आंदोलन सी.जी.एल.प्रोटेस्ट से होती है जिसमें आज के बेरोजगार युवा वर्ग का संघर्ष साफ झलकता है। कहानी का मुख्य पात्र आदिल है। जो एस. एस. सी. की परीक्षा में गणित में एक बार फेल हो जाता है, फेल होने का कारण अनुक्रमांक का सही से न भरा जाना है और यह बात जब साइबर कैफे वाले से आदिल के पिता को पता चलती है तो वे उसे खरी–खोटी सुनाते हैं जिसके उपरांत आदिल अपनी अम्मी के नाम खत लिखकर छोड़ आता है और मयंक के पास मुखर्जी नगर, दिल्ली आ जाता है। मयंक हर तरह से आदिल का ख्याल रखता है और उसे कोचिंग इंस्टीट्यूट में पढ़ाने को फोर्स करता है जहाँ उसकी मुलाकात समीरा से होती है!

उपन्यास में कुछ मार्मिक चित्र भी देखने को मिलते हैं जो लेखक के संवेदनशील हृदय का पता देते हैं। आदिल की माँ जब आदिल को सी.जी.एल. प्रोटेस्ट मे दिल्ली आने के लिए वे रूपये देती हैं जो उन्होंने अपने पिता के हज जाने की तैयारी के लिए रखे थे। यहाँ रचनाकार ने सम्वेदनाओं और सम्बन्धों के समन्वय का सुन्दर चित्रण किया है। किताब के नाम का खुलासा लेखक ने समीरा के भाषण के माध्यम से किया है जिसे वह मंच से युवाओं को संबोधित करते हुए देती है। समीरा आदिल की जिन्दगी में नींद में आए सुन्दर सपने के समान है उनकी प्रेम कहानी का कथानक किताब के संग–संग चलता रहता है जो उपन्यास को जीवन्त बनाए हुए है।

रफीक चाचा की मृत्यु पर चौबे जी द्वारा उनकी मिट्टी का अंतिम संस्कार करने के दृश्य में लेखक का धार्मिक और सामाजिक

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

सौहार्द परिलक्षित होता है। आदिल का कामयाब होकर घर लौटना एक रिक्त स्थान की पूर्ति करता है, पारीवारिक प्रेम का यह दृश्य अभिभूत कर देने वाला है। भाई का लिपटना, बहन का खीर लाना, माँ का माथा चूमना और पिता का सबको ललकार कर उनके भीतर आने को कहना कहीं भारतीय संस्कृति के दर्शन कराता है।

उपन्यास में लेखक के विचारों से उनकी युवता और नवीनता झलकती है तथा उनके द्वारा किये गए विभिन्न भाषाओं– उर्दू, अरबी, फारसी, हिन्दी व संस्कृत के शब्द–संयोजन से किताब की भाषा प्राणवान बन पड़ी है जो उसे पठनीय बनाती है। किताब की खूबियों के संग–संग खामियों पर भी बात होना जरूरी है। वे कमियाँ जो खास तौर पर नजर आईं–

1. पुस्तक में जहाँ एक ओर मार्मिक, आनन्दपूर्ण, और रोमांटिक दृश्य देखने को मिलते हैं वहीं रहस्यात्मक दृश्यों का अभाव नजर आता है।
2. उपन्यास में कहीं–कहीं लय खोती नजर आई कुछ बातें जिन्हें सीमित शब्दों में समेटा जा सकता था बेवजह विस्तार दिया गया।
3. आदिल और समीरा की कहानी जितनी खूबसूरत है अन्त उतना ही मार्मिक! लेखक द्वारा इस प्रेम कहानी में और रंग भरे जा सकते थे।

यह कहानी न केवल आदिल, मयंक, चन्दू, या समीरा की है बल्कि समाज के उस वर्ग की है जो सबसे महत्वपूर्ण होकर भी महत्वहीन रह जाता है। लेखक ने आदिल के माध्यम से हर युवा बेरोजगार के मन को छुते हुए जीवन मूल्यों को उभारा है। पूरी पुस्तक लेखक के भावों, विचारों, यथार्थ और कल्पना का बेजोड़ संगम है! वे बातें जो रह गयीं अनछुई मेरी कलम से, वे सब लिखी हैं किताब में। कुल मिलाकर उपन्यास 'ताश के पत्ते', ताश के पत्तों का वह खेल है जो जीवन में लक्ष्य साधने का हुनर सिखाता है! आप भी यह खेल जरूर खेलिए।

कृति–चर्चा

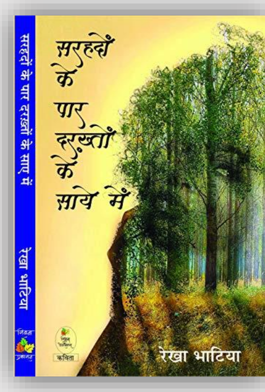

जीवन के रस-रंग में भीगी कविताएं
सरहदों के पार दरख़्तों के साये में

सुधा ओम ढींगरा
101Guymon Ct., Morrisville, NC-27560, USA
sudhadrishti@gmail.com

रेखा भाटिया का नया काव्य संग्रह 'सरहदों के पार दरख़्तों के साये में' मिला। एक ही बैठक में उसे पढ़ लिया। सबसे पहले तो मैं उसके शीर्षक से बहुत प्रभावित हुई। कहीं वैश्विक या प्रवासी शब्द नहीं, लेकिन फिर भी पाठकों को पता चल जाता है कि यह किसी दूर देश का कविता संग्रह हैं। 'सरहदों के पार दरख़्तों के साये में' यानी प्रकृति के सान्निध्य में। रेखा भाटिया अमेरिका की उभरती युवा कवयित्री है और शार्लेट शहर में रहती हैं। दरख्तों से घिरी खूबसूरत वादी जैसे शहर में, कथक नृत्य करती हैं और चित्रकला से बहुत प्यार है। स्कूल में प्राध्यापिका हैं और साथ ही सामाजिक कार्य भी करती हैं। उनके व्यक्तित्व के सभी पहलुओं का उनकी कविताओं में गहरा प्रभाव महसूस किया जा सकता है। प्रकृति प्रेम भी रेखा जी की कविताओं में झलकता

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

है। 'जिंदगी मेरा जीवन सखी' कविता में रेखा जी ने जिंदगी को सखी के रूप में देखा है और उससे पूछती हैं–

मैं भी बूझूँ, मैं भी जानूँ
व्यक्तित्व कैसा है तुम्हारा!
कहानियाँ कई कह गई
रिश्ते कई बना गई
कुछ कहानियों के पात्र हम
कुछ रिश्ते निभाना सिखा गई।

जिंदगी भर हम कितने पात्र निभाते है। कितनी कहानियों को जन्म देते हैं। इसी कविता में लेखिका अपनी सखी जिंदगी से गिला भी करती है–

कभी चलने दो मेरी भी तुम सखी
आगे –आगे तो तुम्हीं चलती रही....

जिंदगी का एक अलग पहलू वह 'मूल कारण' कविता में अभिव्यक्त करती हैं। 'सरहदों के पार दरख़्तों के साये में' पढ़ते हुए महसूस किया, रेखा भाटिया बहुत संवेदनशील हैं। जन्मभूमि और कर्मभूमि के अंतर्द्वंद्व में उलझकर नए रास्ते तलाश रही हैं। जन्मभूमि की विसंगतियों, विद्रूपताओं, सरोकारों के लिए चिंतित हो उठती हैं। कहीं समाज, मानवजात, पुरुषसत्ता से शिकवे–शिकायतें हैं तो कहीं रूढ़ियों, झूठी मान्यताओं को बदलना चाहती हैं। कर्मभूमि में मानवीय भेदभाव और नस्लवाद उन्हें दुखी करता है। वर्षों से अमेरिका में रह रही हैं, अमेरिका की जहाँ प्रकृति का वह आनन्द लेती हैं, वहीं अन्याय के खिलाफ भी उनकी आवाज बुलंद होती है। 'स्वागत को आतुर' कविता में वे वसंत ऋतु का स्वागत करती हैं–

सजने दो बसुंधरा को स्वर्ण–वसंत से
दमकने दो घरती को सूर्य–रश्मियों से
खिल आएँगे पुष्प, महक जाएगी बगिया
बज उठेगा संगीत भौरों की गुनगुनाहट से।

तो कहीं 'प्रकृति से छिपा लूँ वसंत बहार' कविता लिखती हैं... 'बहारों बैठो आसपास', 'बावरा मन मौसम', 'पंछी सिखलाते' कविताएँ भी प्रकृति को समर्पित हैं। 'क्या रोक पाओगे यह खेल' कविता में रेखा जी युद्ध से पीड़ित हो कहती हैं–

हथियारों के पहाड़ों नीचे खोदों
कहीं घायल पड़ी मिलेगी मानवता!

किसी झंडे में छिपा छलनी शरीर
कई दिन रातें बिलबिलाते
नेताओं से सवाल पूछ–पूछ चिल्लाते
नया क्या है यह सदियों का खेल
राजे रजवाड़े गए प्रजा की वही लड़ाई

अपनी जाति से तो रेखा भाटिया बेहद खफा हैं, क्यों न पूछा अपना हाल...कविता में लिखती हैं–

क्या महज साँस लेता जिस्म...
क्या यही मायने हैं स्त्री के!

–0–

आत्मा मरने लगी अब मेरी!
छत–दीवारें, गली चौबारे
हृदय का चौराहा,
सब हुए हैं अब लहूलुहान
किन्तु कब तक चुप बैठूँगी!

–0–

शर्मिंदा तुम नहीं पुरुष, मैं हूँ
क्यों न पूछा अब तक अपना हाल
देवी, शक्ति, मूर्ति से निकल बाहर,
तीन सौ पैंसठ नारी दिवस मना।

'मुखौटा' कविता में रेखा जी भगवान् से कहती हैं कि मुझे दुनियादारी का नकली मुखौटा क्यों नहीं दिया ? मैं क्यों बाजारवाद और समाज में व्याप्त सौदेबाजी से पिछड़ जाती हूँ। बेटी और स्त्री को लेकर रेखा जी ने कई कविताएँ लिखी हैं। अपनी ही जात की प्रतिष्ठा का सम्मान करते हुए स्त्री की अस्मिता, अस्तित्व पर बड़े धड़ल्ले से लिखा है। कई विषय और बातें ऐसी होती हैं, जिन पर कहानी लिख कर भी अभिव्यक्ति की संतुष्टि नहीं होती पर कविता में बड़ी सहजता और सरलता से स्वाभाविक ही उन भावों का संचार हो जाता है। रचनाकार की दृष्टि समाज के उन कोनों तक भी पहुँच जाती है, जिनकी अवहेलना कर वर्जित कर दिए जाते हैं। कवि अपनी कल्पना से नई राहें तलाशता है, हृदय को छूकर जीवन को सतरंगी कर देता है।

'सरहदों के पार दरख़्तों के साये में' कविता संग्रह में रेखा भाटिया ने तकरीबन जीवन के सभी रसों और रंगों में भीगी कविताएँ लिखी हैं। कहीं मन की पीड़ा 'रिश्ते झरे पत्ते', 'वह गम कभी छिपा

नहीं', 'खुरदरी सी हो गई जिंदगी', 'मन क्यों उदास होता है', 'रिश्ते छूट जाते घाटों पर', 'आस में मिटती', कविताओं में झलकती है तो कहीं समाज में हो रहे अन्याय के प्रति आक्रोश 'मैं स्त्री बन पैदा हुई' में टपकता है। नारी को दोयम दर्जे का समझे जाने से वह तड़पी है 'संसार बदलने चली है बेटी' कविता में। कहीं कवयित्री 'भविष्य में आने वाले कल की नींव' का जिक्र करती है और कहीं रेखा जी पाठक को 'चलिए अतीत में चला जाए' कविता में अपने इतिहास को खंगालने के लिए बाधित करती है। प्रेम, बेवफाई, राष्ट्रप्रेम, अंतिम सत्य खोजती 'देह यात्रा', हर दिन त्योहार, पिता, माँ, बेटी, रिश्ते, अलौकिक प्रेम, हर विषय पर इस संग्रह में कविताएँ हैं। कुछ कविताएँ दिल को छूती निकलती हैं, कुछ विवेक को झंझोड़ती हैं। कई कविताएँ सोचने पर बाध्य करती हैं। 143 पृष्ठों और 72 कविताओं का संग्रह 'सरहदों के पार दरख़्तों के साये में' पठनीय है और कवयित्री रेखा भाटिया का यह पहला प्रयास है, जो सराहनीय है।

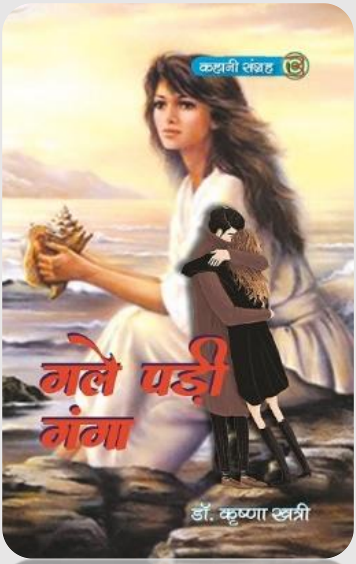

गले पड़ी गंगा

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-7-8
संस्करण : 2020, मूल्य : 200/-

कृति–चर्चा

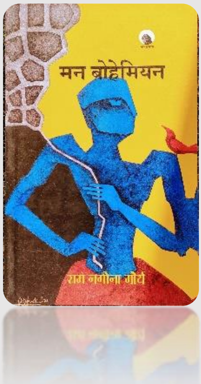

संभावनाओं की कहानियां
मन बोहेमियन

विजय कुमार तिवारी
टाटा अरियाना हाऊसिंग, टावर–4, फ्लैट–1002,
महालक्ष्मी विहार, भुवनेश्वर, उड़ीसा–751029
मो.–9102939190

कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी,आज कहानी विधा अपने चरमोत्कर्ष की ओर अग्रसर हो रही है या कम से कम उसकी यात्रा पहचानी जा रही है। साहित्य समाज का चेहरा दिखाता है और उसकी हर विधा इस पुनीत दायित्व संवहन में लगी हुई है। दुनिया भर में खूब लिखा जा रहा है। समाज की सारी जटिलतायें, सारे पराभव, सारे उत्कर्ष उभर रहे हैं। चिन्तन के केन्द्र में मनुष्य ही है और उसका सारा संघर्ष। रचनाकार अपनी अनुभूति को उकेरता है, चित्रित करता है और समाज को उसका आईना दिखाता है। हर साहित्यकार यही करता है, जन–सामान्य के भीतर कोई प्रकाश मूर्त होता है और उसके आलोक में स्थितियाँ सुलझने लगती हैं।

मनुष्य और उसके सामाजिक सरोकारों को रेखांकित करती रचनायें प्रकाश स्तम्भ की तरह होती हैं, भले ही उनका दायरा सीमित

हो या विस्तृत। जिस रचनाकार का अनुभूत संसार जैसा होता है, वैसा ही उसका लेखन होता है। विचारधाराओं ने बहुत घालमेल किया है,विशेष तौर से आयातीत विचारों ने। मुझे कहने में कोई संकोच नहीं है कि हमारे देश की भूमि और मिट्टी में खिलने वाले पौधे जितना आकर्षक, प्रिय और लाभप्रद होंगे उतना बाहरी दुनिया के नहीं। हमारी सभ्यता–संस्कृति को आयातीत विचारों ने प्रभावित करने की बहुत कोशिशें की हैं। यह किसी एक देश के लिए लागू नहीं है बल्कि समूची दुनिया पर इसका प्रभाव है।

कहानी विधा पर बहुत कुछ लिखा गया है और नित्य लिखा जा रहा है। कविता की तरह कहानी के सन्दर्भ में भी चर्चाएँ होती हैं और उसके तत्वों की खोज की जाती है। यह शास्त्र–ज्ञान का विषय हो सकता है परन्तु समझना तो पड़ेगा ही। 'मन बोहेमियन' हिन्दी कहानी की दुनिया के चर्चित कहानीकार श्री राम नगीना मौर्य जी की कहानियों का नवीनतम संग्रह है। उनके अनेक कहानी संग्रह छप चुके हैं और चर्चित रहे हैं। मौर्य जी को अनेक छोटे–बड़े पुरस्कार मिले हैं। मेरे लिए सुखद संयोग है, मैं उन्हें ह्रदय से बधाई देता हूँ, उन्होंने अपने तीन कहानी संग्रह– 'यात्रीगण कृपया ध्यान दें', 'साफ्ट कार्नर' और 'मन बोहेमियन' भेजा है। ये तीनों कहानी संग्रह लखनऊ के 'रश्मि प्रकाशन' से प्रकाशित हुए हैं।

'अपनी बात' में श्री राम नगीना मौर्य जी ने विस्तार से अपनी कहानी विधा लेखन की चर्चा की है। उनके वक्तव्य से उनकी रचना प्रक्रिया को समझना सरल हो जाता है। कहानीकार ने स्वयं स्वीकार किया है कि 'अपनी बात' लिखना उनके लिए सरल नहीं होता, परन्तु मुझे लगता है, बहुत कम शब्दों में उन्होंने अपनी सम्पूर्ण मनःस्थिति को खोलकर रख दिया है। यही तो मूल चिन्तन वस्तु है। उन्होंने चेखव को उद्धृत किया है। पूरी दुनिया में चेखव के विचार को स्वीकारा गया है। उनका मानना है, *'जिन्दगी की सबसे मामूली बातों में सबसे बड़ी कहानियाँ छिपी होती हैं।'* किसी भी बड़े रचनाकार के लिए ऐसी समझ का होना जरूरी है। मौर्य जी को भी हिन्दी कहानी के पाठक, आलोचक और समीक्षक उन महत्वपूर्ण कहानीकारों में जोड़ सकते हैं। इन कहानियों को पढ़ते,समझते हुए ऐसा लगता है कि उन्हें अपने समाज की, आसपास की दुनिया की बड़ी गहरी पकड़ है।

कहानियों पर चर्चा के क्रम में हम देख पायेंगे कि उनकी दृष्टि बहुआयामी तौर पर जीवन के हर पहलू तक गयी है और उन्होंने जीवन की जटिलताओं को गहराई से समझा है। लेखक या किसी भी कथाकार की असली परीक्षा उसके द्वारा मनुष्य के अन्तर्सम्बन्धों की पकड़ और व्याख्या में होती है। उन्होंने 'अपनी बात' में इसे भावनात्मक सम्बन्धों में खोजना चाहा है और बहुत हद तक सफल भी हैं। उन्होंने इसे नजरिया कहा है और अपने चश्मे से देखने की कोशिश की है। यह जरूरी भी है और उचित भी। उनसे असहमत होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। उन्होंने भाव और संवेदना को टटोलने का प्रयास किया है। उन्हीं के शब्दों को देखिये, *'आज का युग भले ही मशीनी हो लेकिन प्राणी जगत के लिए उसका भाव और संवेदना पक्ष ही सबसे महत्वपूर्ण होता है। कभी–कभी लगता है कि निर्जीव जगत भी सांस लेते हैं।'* मौर्य जी में वह दृष्टि है और उनकी रचनाओं में स्पष्ट तौर पर दिखाई देती है।

उनका अनुभूत संसार मनुष्य और मनुष्य की जटिलताओं, अन्तर्सम्बन्धों के साथ–साथ प्रकृति, हरियाली और उसकी विविधताओं को भी समेटता है। प्रकृति के अवयवों के भीतर से निकल रही ध्वनियों, तरंगों और हमारे जीवन में उसके प्रभावों को समझने की उनकी अद्भुत कोशिश है। हमारा भारतीय दर्शन उन सूक्ष्म तरंगों की विशद व्याख्या पहले से ही करता आ रहा है। हमारे जीवन मूल्यों में ये सारी चीजें रची–बसी हैं। उनके बिना भारतीय जीवन और उसमें अन्तर्निहित सम्बन्ध की सही व्याख्या सम्भव ही नहीं है। मौर्य जी की कहानियों में कहीं–कहीं व्यंग्य का सम्मिश्रण देखा जा सकता है और इससे उनके चिन्तन का दायरा विस्तृत होता गया है। सफल लेखक वह भी है जो आवश्यकतानुसार साहित्य में रसों का सम्मिश्रण करता है। रस के बिना जीवन शुष्क होता है और पाठक को उतना आनन्द नहीं मिलता। थोड़ी रसिकता,थोड़ा प्रेम मर्यादा में हो तो श्रेयस्कर ही होता है। मौर्य जी की कहानियों में कविता के बहुत से भाव अनुभव किये जा सकते हैं। ऐसा नहीं है कि सब कुछ सायास उनकी कहानियों में उभरा है बल्कि स्वाभाविक तौर पर चीजें स्पष्ट हुई हैं। इसे उनकी कहानियों का महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाना चाहिए। इन्हीं आधारों पर श्री राम नगीना मौर्य जी की कहानियों का आस्वादन करना है। किसी भी रचनाकार की रचनाओं का मूल्यांकन करना चाहिए और उसमें

निहित तत्वों को सामने लाना चाहिए। उनकी शैली और भाषा के बारे में लेखकों, पाठकों की बहुत अच्छी राय है। मौर्य जी बहुत पढ़े जाने वाले लेखकों में शुमार हैं और उनके प्रशंसक देश ही नहीं विदेशों में भी हैं। उत्तर प्रदेश राज्य सरकार में विशेष सचिव का गुरुतर दायित्व सम्हालते हुए उत्कृष्ट लेखन करना बड़ी बात है। उन्हें पढ़ा जाना चाहिए और उनके कहानी संग्रह पढ़े जाते हैं।

'मन बोहेमियन' में मौर्य जी की चौदह कहानियाँ हैं। संग्रह की अंतिम कहानी 'पचपन कहानियाँ' शायद सबसे छोटी कहानी है और निश्चित ही उनके किसी अकादमिक स्वानुभवों से जुड़ी है। एकल चिन्ता से शुरु होकर कहानी बहुल परिदृश्य को समेटती है और अपने शीर्षक को चरितार्थ करती है। कहानी हर किसी को स्वयं के भीतर से, अपनी चहारदीवारी से, बाहर निकलने की सलाह देती है और सामूहिकता के अनुभवों, सुखों और आनंद का आश्वासन देती है। कहानी में मन के भीतर के अन्तर्द्वद की बातें तो हैं परन्तु कहीं भी निराशा, हताशा नहीं है। व्यक्ति विकास का प्रभावी स्वरूप उभरता है और सामाजिक होने के लाभ दिखाई देते हैं। 'गलतफहमी' और 'शिकार' दोनों कहानियाँ व्यक्तित्व के अलग–अलग पहलुओं को उजागर करती हैं। यही हमारा मनोविज्ञान है और हमारी कमजोरियाँ भी। शहरीकरण के दौर में हमारा जीवन एकाकी और तनहा होता जा रहा है। हम सब समझते हैं परन्तु स्वयं को बदल नहीं पाते और अपनी कमजोरियों के शिकार होकर रह जाते हैं। आलस्य और क्रोध जैसी कमजोरियाँ जीवन को हर तरह से प्रभावित करती हैं और जगहँसाई तो होती ही है, मनुष्य अपनी नजर में भी खटकने लगता है। मौर्य जी की दृष्टि बड़ी पैनी, धारदार है और साधारण पृष्ठभूमि से बड़ी बात कहते हैं।

'घड़ी' कहानी आज के तकनीकी युग में हमारे सम्बन्धों पर गहरी चोट करती है। रिश्ते–नातों को सहेजने की ललक तो है परन्तु बहुत से अन्य कारण हैं जो जुड़ने के लिए पहल करने नहीं देते। आपसी बातचीत में घर का सारा सम्बन्ध उजागर होता है और एक–दूसरे पर की गयी छींटाकशी वैसी ही है जैसे सचमुच घरों में होता ही है। मौर्य जी की आँखें अपने आसपास, अपने घरों में हो रही गतिविधियों पर सटीक खोज करती हैं। सूक्ष्म व्यंग्य उनकी रचनाओं में देखा जा सकता है हालांकि उन्होंने व्यंग्य सोचकर शायद ही लिखा

हो। आज के बदलते हालात हमारे जीवन के लिए एक तरह से व्यंग्य ही हैं। 'शगुन' कहानी में पति–पत्नी की बातचीत देखिए। मौर्य जी की विशेषता है कि आपसी गुह्य बातें भी सर्व सामान्य के लिए प्रेरक हो जाती हैं। लेखक भले ही दुनिया भर में चर्चित, पूजित हो, घर में पत्नी की बातें सुननी ही पड़ती है। इससे जीवन में मधुरता और सुख बढ़ता है। मौर्य जी अपनी कहानियों में जीवन की स्वाभाविक स्थितियों को बखूबी प्रस्तुत करते हैं। यह उनके अनुभव का प्रमाण है। पत्नी बाजार में किसी सुन्दर, सजी–संवरी स्त्री को देखकर नारी सुलभ बातें करती है और पति अपनी प्राथमिकतायें गिनवाता है। यह सनातन सच्चाई है और हर मध्यम श्रेणी के परिवार की कहानी है। सुखद है कि कहीं कटुता नहीं उभरती और सहज तरीके से सारे भेद–मतभेद सुलझते चलते हैं। यह हमारी भारतीय संस्कृति और परम्परा है। 'शगुन' कहानी में दीवाली की खरीदारी पाठकों को रोमांचित करती है और मार्ग–दर्शन भी।

मौर्य जी की अगली कहानी श्गार्जियनश कोई बहुत प्रभावशाली नहीं लगी। ऐसी विषयवस्तु पर कहानी कोई नयी नहीं है,बहुत सारी फिल्में बनी हैं और पुराना घिसा पिटा फार्मुला जैसा है। समाज में ऐसे लोग भरे पड़े हैं जो अपना बदरंग चेहरा दिखा ही देते है। शिक्षा, योग्यता, लगन, मेहनत सब बेमानी हो जाता है ऐसे लोगों के सामने और जो अर्थपूर्ण होता है वह उसका स्त्री होना, लड़की होना। यह हमारे समाज का रोग है,कोढ़ है और उसका दंश नारी भोगती है। कमोवेश यह बीमारी पूरी दुनिया में व्याप्त है। दुनिया भर की लड़कियाँ, स्त्रियाँ त्रस्त हैं इस सोच से, इस चिन्तन से। मौर्य जी की इस कहानी से जो संदेश मिलना चाहिए,वह नहीं मिलता। अनन्या पलायन करती है,उसे संघर्ष का कोई रास्ता चुनना चाहिए था। वैसे कहानी की बुनावट अच्छी है और पाठकों को अंत तक बाँधे रखती है। संग्रह की पहली कहानी श्गोदश ने अद्भुत मनोवैज्ञानिक तरीके से ध्यान आकृष्ट किया। हर स्त्री को पत्नी, मां या अन्य रिश्तों में अपना दायित्व निभाना पड़ता है। स्त्री घर की धूरी होती है, सभी उससे ऊर्जा, प्रेम, सुख, शान्ति, सहानुभूति पाना चाहते हैं, और अपनी पीड़ा, दुख, संघर्ष सब बांटना चाहते हैं। मौर्य जी की लेखनी घर के केन्द्र में स्थित नारी को मान के साथ प्रस्तुत करती है और यह सबसे बड़ी सच्चाई है। स्त्री समझती है और अपने प्रेम से, त्याग से घर सम्हालती है।

'मदद' मौर्य जी की बड़ी मार्मिक कहानी है। जिसका कोई नहीं होता, उसका ऊपरवाला होता है। किसी न किसी रुप में कोई न कोई मदद करता ही है। कमजोर और गरीब एक–दूसरे के दुख में सहर्ष शामिल होते हैं और मदद करते हैं। सबसे सुन्दर बात है कि सोमारू अपने शेष जीवन में ऐसे ही दूसरों की मदद का बीड़ा उठाता है और मरघट के पास बाबा की झोपड़ी में पहुँचता है। 'दो फरियादी' कहानी के कमल नयन जी का मौर्य जी ने अद्‌भुत चित्रण किया है। ऐसे व्यक्ति के साथ घर में, कार्यालय में या कहीं भी कम सुनने की समस्या से विचित्र–विचित्र स्थितियाँ पैदा होती हैं। मौर्य जी को देश के कार्यालयी जीवन का खूब अनुभव है इसलिए कहानी बहुत रोचक, किंचित व्यंग्य, थोड़ी लाचारी थोड़ा रोमांच से भरी हुई है। अधिक मात्रा में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग शायद आज हमारी लाचारी बन चुका है। उर्दू, अवधी और भोजपुरी के शब्द मौर्य जी का बहुभाषाविद होना प्रमाणित करते हैं। क्लिष्ट शब्द पढ़ने में कहीं–कहीं व्यवधान से लगते हैं परन्तु प्रवाह में कोई कमी नहीं होती, रोचकता बनी रहती है। मौर्य जी बड़े कथाकार हैं, उन्हें अपनी सीमायें मालूम हैं। दोनों फरियादी एक ही समस्या से ग्रसित हैं, बड़े ही स्वाभाविक तरीके से आत्मीय हो जाते हैं,आपसी तालमेल बनता है और एक–दूसरे से सहजता महसूस करते हैं।

इनकी कहानियों की एक यह भी विशेषता है कि ठेठ देशज मुहावरों का भी प्रयोग बहुतायत मिलता है। किसी न किसी बहाने पाश्चात्य लेखकों का जिक्र मिलता है, लगता है, उन्होंने दुनिया भर के लेखकों को खूब पढ़ा है। 'भूल सुधार' कहानी मौर्य जी की सूक्ष्म दृष्टि और गहरी समझ को दिखाती है। कहीं भी कहानी ढूंढ लेना उनकी विशेषता है और बहुत बारीकी से सृजन करते हैं। सब कुछ जीवन्त और स्वाभाविक लगता है। रविवार को निकलने वाले साहित्यिक परिशिष्ट की तलाश में अखबार के दफ्तर तक जाना और बस पड़ाव पर घटित हो रहे हर छोटे–बड़े घटनाक्रमों को सुनना, देखना, पहचानना और कहानी बना लेना मौर्य जी की अद्‌भुत विलक्षणता है। राह चलते हुए, कार्यालय में, बाजार में, पार्क में, कार चलाते हुए, गर्मी में, ठंड में,बरसात में कहीं भी कहानी ढूंढ लेते हैं। यह उनकी गहरी समझ और संवेदना दर्शाती है। बहुत सुन्दर कहानी बन पड़ी है। अलग–अलग परिस्थितियों में हमारी सोच कैसे बदलती

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

रहती है, दार्शनिक अंदाज में बात करते दो सयाने सज्जन आधुनिक वेशभूषा में हँसती, खिलखिलाती लड़कियों को देखकर चिन्तन के किस स्तर पर उतर आते हैं और अपने घर में बेटी के माध्यम से उस बदलाव को स्वीकार करने के लिए बाध्य हैं। मौर्य जी के इस संग्रह को पढ़कर खुशी हो रही है। हिन्दी कहानी की दुनिया में उनकी कहानियाँ पढ़ी और सराही जायेंगी।

'मच्छर महात्म्य' कहानी व्यंग्य का अद्भुत नमूना है। सामान्य लोगों को मौर्य जी ने नायक बना दिया। इसी बहाने मनुष्य का, हमारी प्रगति का, विकास का, हमारे चिन्तन, शोध का मूल्यांकन करते हुए बाजारवाद पर गहरी चोट सराहनीय है। यह वार्तालाप अद्भुत है और हमारी आँखें खोलने के लिए पर्याप्त है। यहाँ भी उन्होंने बनारसी, भोजपुरी, अवधी, उर्दू और अंग्रेजी बोली व भाषाओं का अनूठा प्रदर्शन किया है। समाज की चिन्ता,देश में व्याप्त गन्दगी, भ्रष्टाचार, नीति निर्धारकों पर व्यंग्य, पीढ़ियों के चिन्तन–भेद सहित अनेक समस्याओं को गहरे तक समझने की कोशिश है। कहानी के माध्यम से शिक्षण, इतिहास के सन्दर्भ में वर्तमान को समझने की कोशिश उनकी कहानी बडा संदेश देती है। सामान्य सी दिखने वाली बातचीत में विचारधारात्मक कोई गूढ़–सी अन्तर्धारा प्रवाहित होती दिखती है। यह श्रेष्ठ रचनाकार की दृष्टि से ही सम्भव है। जो बाहर दिखता है,उनकी कहानी मात्र उतनी ही नहीं है, वह बहुत गहरा चोट करती है। मौर्य जी पहले स्वयं समझते हैं, खूब चिन्तन करते हैं, फिर कहानी के माध्यम से समाज, देश के सामने वास्तविकता समझाते हैं। उनकी कहानियाँ आँखें खोलती सी दिखती हैं।

'गण–पूर्ति का खेल' कहानी तीन मित्रों के भीतर चल रहे अन्तद्वंद्व, उनके आपसी सम्बन्धों पर शंकाओं की चादर, साथ बने रहने की बाध्यता, हमारे भीतर के मनोविज्ञान को खोल कर रखती है। आज का आदमी इन्हीं हालातों में जी रहा है और सुखी नहीं हो पा रहा है। 'बोलते पत्थर' कहानी के माध्यम से मौर्य जी भारतीय दर्शन और जीवन दर्शन की सटीक चर्चा करते हैं। यह उनकी परिपक्व अंतर्दृष्टि ही है कि सामान्य से दिखने वाले पत्थर में प्राण–चेतना जगाते हैं और श्रेष्ठ कहानी रच डालते है। हम तो इस अवधारणा में जीते ही हैं कि कण–कण में भगवान हैं और वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है। यदि आप स्वयं में मौन हो जायें, भीतर के कोलाहल से स्वयं को

क्षणिक अलग कर लें तो आपको प्रकृति का, धरती का, पत्थरों का, पेड़ों, नदियों का संगीत, संदेश और उनकी बातें सुनाई देंगी। हमें भी ऐसी अनुभूतियाँ होंगी, जीवों, वनस्पतियों, यहाँ तक कि निर्जीव वस्तुओं का स्पन्दन सुन सकते हैं। मुझे कहने में कोई संकोच नहीं है कि हर विचारक, चिन्तक और अन्वेषक ऐसे अनुभवों से गुजरता ही है। बस हमारे भीतर थोड़ी संवेदना हो, थोड़ा धैर्य हो, भीतर सबके प्रति प्रेम हो और ईश्वर पर विश्वास हो। हर लेखक किसी न किसी हद तक संवेदनशील होता ही है परन्तु जो रचनाकार बोलते पत्थरों की पीड़ा सुन, समझ सके, उसकी संवेदना का अंदाजा लगाइये। श्रद्धा से, स्नेह से और अपने अनुभवों के आधार पर उनकी संवेदना सहज स्वीकार करता हूँ। हमारे समाज में ऐसे बहुत लोग हैं जो उपेक्षित, अनादृत और तिरस्कृत हैं, ऐसे लोगों के प्रति करुण होना, एक संवेदनशील व्यक्ति ही कर सकता है। वही समझ सकता है और कह सकता है, तुम अभी भी उपयोगी हो। ईश्वर का हर निर्माण उपयोगी और सोद्देश्य है।

अपनी बात रखने के क्रम में मौर्य जी सूर, तुलसी सहित दुनिया भर के लेखकों को उद्धृत करते हैं और लोकोक्तियों, मुहावरों का प्रयोग करते हैं। कहानी में लालित्य और रोचकता बढ़ जाती है। प्राचीन परम्परागत शब्दों के साथ–साथ आज बोलचाल में प्रचलित हिन्दी, अंग्रेजी शब्दावली, मुहावरे और वाक्य प्रभाव छोड़ते हैं। आज के युवाओं, युवतियों के बीच प्रचलित नयी–नयी शब्दावली का प्रयोग करने से मौर्य जी नहीं हिचकते। यह उनका साहस भी है और सामर्थ्य भी। सबसे बड़ा वह लेखक होता है जो स्वयं पर व्यंग कर सके, आत्म निरीक्षण करे और अपनी विसंगतियाँ सामने लाये। ध्यान से देखा जाय तो अपनी कहानियों में उनकी उपस्थिति बनी रहती है और तब वे उस पात्र पर खूब आक्रमण करते हैं,उसे अपने व्यंग्य का आधार बनाते हैं। यह उनकी विशेषता के रुप में लेना चाहिए। चरित्र चयन में उन्हें महारत हासिल है। पाठकों को गुदगुदाते चलते हैं और संदेश भी देते हैं। 'मन बोहेमियन' इस संग्रह की आकार और विस्तार में सबसे बड़ी कहानी है। अन्य कहानियों से किंचित भिन्न इसमें औपन्यासिक तत्व महसूस किये जा सकते हैं, परन्तु है तो कहानी ही। यह कोई मतभेद का विषय नहीं है। कहानी में नायक रामप्रकाश जी स्वयं अपने मन की उड़ान और भुगते हुए यथार्थ की चर्चा बहुत विस्तार से परत दर परत खोलते हुए करते हैं। आसपास, घर–आंगन, कमरा, बिस्तर,

मेज–कुर्सी, खूंटी पर टंगे हुए कपड़े, बड़ा सा आदमकद शीशा, पिताजी का छाता, किताब–कापियों का रैक, ट्रेनिंग में दो महीनों का अनुभव, सबके सोचने–विचारने से लेकर, सबके भीतर के अन्तर्द्वन्द, व्यंग्य–उलाहना, मध्यम आय वाले परिवार का बोझ उठाते हुए गहरी समझ का परिचय देते हैं। सबसे अच्छा है,उनका सबको समेटते हुए चलना। वार्षिक पुरस्कार समारोह में जाना है। मेज के माध्यम से अपने पुत्र और पुत्री को याद करते हैं, शर्ट–पैण्ट के माध्यम से पत्नी को और सारा विवरण ब्यौरेवार बताते हैं जैसे सबके सहयोग को पाकर भीतर ही भीतर कृतज्ञ और प्रेम भाव से भरे हुए हैं। पारिवारिक सुख का चित्रण बहुत सुन्दर ढंग से हुआ है। उनकी कविता की प्रशंसा होती है, फिर भी महसूस करते हैं,ऐसी कविता लिख ही नहीं पाया,जो मेरे मन के उथल–पुथल को शान्त कर दे। हर बड़े लेखक की यही मनोदशा होती है। संतुष्ट हो जाना मतलब ठहर जाना, रुक जाना। ऐसा नहीं होना चाहिए। बहाव हो, प्रगति हो और जीवन नित्य नूतन अनुभवों से भरता जाता हो।

उन्हें किंचित अफसोस होता है,मेज की चर्चा तो हुई ही नहीं जबकि कविता के वर्तमान स्वरुप तक आने में उसका भरपूर सहयोग रहा है। सिंगारदान के सामने पत्नी, बच्चों सहित स्वयं खडा होना और तत्कालीन हाव–भाव का सटीक चित्रण करना कहानी को पठनीय बना देता है। लेखक सबकी भूमिका को सहज ही स्वीकार करता है। मौर्य जी लिखते हैं, *'मेरे लेखन में पत्नी की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण है।'* हालांकि छोटी–छोटी चीजों में मतभेद उजागर होते हैं परन्तु कभी भी वातावरण को असहज नहीं होने देते। उन्हें अपनी कमजोरियाँ ज्ञात है और यह भी स्पष्ट है कि रहना इन्हीं लोगों के बीच है। अपने शरीरगत ढांचे और बनाव–शृंगार पर व्यंग्य अद्‌भुत है। उन्हें अपने क्रोध और भूलने की बीमारी का भी ज्ञान है। इसके चलते हादसे या घटनायें हो ही जाती हैं। मौर्य जी विद्वानों की बातों को अपनी कहानी में सुन्दर उपयोग करते हैं। यथा पाब्लो नेरुदा लिखा है, *'प्रत्येक प्रतिभा के चारों तरफ ईर्ष्यालु लोगों का एक दायरा होता है।'* कहानी में जितने ब्यौरे आये हैं, सबको स्मृति में धारण किये रहना सहज नहीं है। कहानियों में संवेदना और मनोविज्ञान बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उसी तरह बौद्धिकता और खिलन्दड़ापन उनकी कहानियों को जीवन्त बनाते हैं। मौर्य जी की कहानियाँ सहज ही आँखें खोलने को बाध्य करती हैं।

कृति–चर्चा

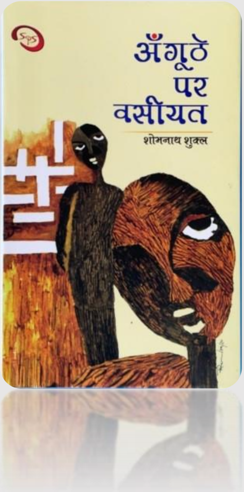

ग्रामीण जीवन के सच कर आइना
अँगूठे पर वसीयत

सुरेशचंद्र शर्मा
मिश्रौली, लम्भुआ, सुल्तानपुर 222302
मो. 7379736426

शोभनाथ शुक्ल के संघः प्रकाशित उपन्यास 'अँगूठे पर वसीयत' को मैंने पूरे मनोयोग से आद्योपान्त पढ़ा गया। 252 पृष्ठों में फैली इस उपन्यास की कथा मन को बाँधे रखने में सक्षम है। 'अँगूठे पर वसीयत' को मैंने समीक्षा एवं विमर्श के मूल आयामों से जोड़कर पूरी तन्मयता से इसे परखने की कोशिश किया एवं उस कोशिश में यह बात प्रभावशाली ढ़ंग से उभर कर सामने आयी कि उपन्यासकार ने बड़े ही परिश्रम से और निरापद मन से लिखा है।

उपन्यास में नारी और पुरूष पात्रों की मिली–जुली संख्या एक दर्जन है। कुछ पात्र जैसे राम बरन गरीब, जसोमती देवी, बलराम,

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

परधानिन बुआ (सुमित्रा), नोहरी, सुमीता, रोशन पटेल, चौबे जी आदि की उपस्थिति कथानक के विस्तार में काफी दूर तक साथ देती है किन्तु कुछ अन्य पात्र–चौधरी–चौधारइन, व चरवाही करते किशोर बच्चे, प्रौढ़ स्त्री–पुरूष उपन्यास की कथा–यात्रा में अपनी क्षणिक उपस्थिति दर्ज कराकर ओझल हो जाते हैं। उन ओझल हो–जाने वालें पात्रों का चरित्र भी सोचने–समझने के लिये मजबूर कर देता है। इस उपन्यास के मुख्य पात्र राम बरन गरीब, जसोमती देवी, परधानिन बुआ (सुमित्रा), चौबे, नोहरी, सुमीता, रोशनपटेल आदि– के चरित्र का उपन्यासकार ने बड़ा ही जीवन्त चित्रण किया है। सुप्रसिद्व पाश्चात्य साहित्यकार चेखव ने ठीक ही कहा था कि, ''जीवन्त चरित्र भव्यविचारों को जन्म देता है''। इस कथन के आलोक में उपन्यास के पात्रों का चरित्र अपने रंग–ढ़ंग में पाठकों के मन पर गहरा प्रभाव डालने में सक्षम है। पाश्चात्य उपन्यासकार और नोबुल–पुरस्कार विजेता साहित्यकार हेंमिग्वे ने सच ही कहा है कि, ''रचना में मूल सम्वेदना जितनी ही गहरी और प्रभावशाली होगी, वह रचना उतना ही मन को स्पर्श करेगी।'' इस कथन को दृष्टि में रखकर यदि 'अँगूठे पर वसीयत' कृति को परखा जाए तो इसकी सम्वेदना भी मन पर गहरा प्रभाव डालती है।

इस कृति का कथानक कोई नया नहीं है और न ही आश्चर्य पैदा करने वाला ही है। ऐसी घटनाएं ग्रामीण जीवन में प्रायः ही हो रही हैं। उपन्यास के मुख्य पात्र राम बरन गरीब जैसे लाचार पिता और पढ़–लिख कर ऊँचे पद पर आसीन एवं घर–परिवार को अनदेखा करने वाले बलराम जैसे पुत्र, तथा पारिवारिक रिश्तों को कलंकित करने वाले नोहरी चाचा–सरीखे पात्र एवं किशोर बच्चों के साथ दैहिक भूख मिटाने वाली चौधराइन, अपनों से ही बार–बार लुटती–पिटती, शारीरिक शोषण का शिकार होती सुमीता जैसी तरूणियाँ भी भारत के प्रत्येक गाँव में पायी जा सकती हैं। इधर तीन दशक से मानवीय सम्बन्धों का विचलन, मानवता का ह्रास, निरन्तर बढ़ती भोग–विलास की प्रवृत्ति ने सज्जनता को दबा दिया है और दुर्जनता सर्वत्र अट्टहास कर रही है। इसके मूल कारण में पाश्चात्य जीवन–शैली की नकल ही मुख्य है। महत्वपूर्ण तो यह है कि उपन्यासकार डॉ0 शुक्ल जी ने ऐसे ही समाज की सामान्य घटना–क्रम से जुड़े कथानक को भी अपने

लेखकीय अनुभव, और रचना–कौशल से रोचक, पठनीय तथा दमदार बना दिया है।

इस कृति के कुछ प्रसंग, घटना क्रम, दृश्य व कथात्मक वातावरण को उपन्यासकार ने अपनी कल्पना के बल पर निरूपित किया है किन्तु वे सब प्रसंग अपनी सर्जनात्मकता, बुनावट, कसावट एवं शिल्पीय सजावट में इतने जीवन्त बन पड़े हैं कि कहीं से ऐसा महसूस नहीं होता है कि कथाकार ने जान–बूझकार इनका समावेश इस कृति में किया है। सच तो यह है कि ये प्रसंग अपनी प्रभावमयी प्रस्तुति में वैसे ही क्षणिक आनन्द की अनुभूति कराने में सक्षम हैं, जैसे–मुंशी प्रेमचंद के 'गोदान', रेणु के 'मैला–आँचल', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह के 'नीला चाँद' धर्मवीर भारती के 'गुनाहों का देवता, 'नरेश मेहता के 'दो एकान्त', डॉ. पद्‌माशा झा के दरवाजा इधर से खुला है,' शिवानी के 'चौदह फेरे' व सुरंगमा और डॉ0 अनुराग शर्मा के 'गन्ध जो रह गई' जैसे कथात्मक कृतियों के कुछ प्रसंग आनन्दानुभूति कराते हैं। समीक्ष्य कृति में भी कुछ प्रसंग ऐसे हैं कि पाठक का मन उन प्रसंगों में ऐसा रच–बस जाएगा कि वह कृति को शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण करने के लिये–तत्पर हो जाएगा।

'अँगूठे पर वसीयत' में चार–पाँच स्त्रियों की चारित्रिक भूमिका का समावेश है। इनमें चौधराइन, सुमीता और परधानिन बुआ (सुमित्रा) के प्रारम्भिक रति–राग–रंजित चरित्र का जैसा निरूपण कथाकार ने किया है, वह 'चरित्र–चित्रण' अटपटा भी लगता है और भारतीय आदर्श नारी–चरित्र एवं गरिमा के विपरीत भी लगता है। भारतीय चिंतन और सौन्दर्य दृष्टि में नारी के मूल रूप से दो रूप स्वीकार किये गये हैं, पहला रूप 'वीरांगना' और दूसरा रूप 'वारांगना' का। वारांगना की छवि को दर्शाता इन दोनों नारियों का चरित्र अन्ततः वीरांगना की छवि को प्राप्त करता है। यही इस कृति के बीज–तत्व और कथाकार की साहित्य–साधना का चरमोत्कर्ष है। इतना ही नहीं इन उपरोक्त दोनों नारी पात्रों के रति–प्रसंगो को भारतीय सौन्दर्य दृष्टि के आइने में रखकर मूल्यांकन किया जाए तो न चाहते हुये भी मन विमर्श की ओर स्वतः बढ़ जाता है। उपन्यास में परधानिन बुआ 'सुमित्रा' और तरूणी 'सुमीता' के चरित्र का प्रारम्भिक प्रदर्शन सोचने–पर विवश कर देता है। परधानिन बुआ सभ्य, सुसंस्कृत, सम्मानित परिवार की विधवा लाडली पुत्री हैं। शिक्षा में पोस्ट–ग्रेजुएट हैं दो–तीन

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

बार से प्रधान रह चुकी हैं। सम्मान जनक सामाजिक दायित्व का निर्वहन कर रही हैं। बीस वर्ष की आयु में वह विधवा हो चुकी हैं। माता–पिता दूसरी शादी के लिये उन्हें–लगातार प्रेरित करते रहे किन्तु वह दाम्पत्य–सूत्र में पुनः नहीं बंधी। चालीस वर्ष की आयु में पुनः प्रधानी के चुनाव में सामने खड़े प्रबल प्रतिद्वन्दी रविकान्त चौबे को चुनाव से दूर करने के लिये शहर के एक प्रतिष्ठित होटल के कक्ष में चालबाजी वश बुलाती हैं। पाँच लाख रूपये से भरे सूटकेश को चौबे जी के समक्ष रख देती है। यहाँ तक तो चुनावी तिकड़म और चोंचलेबाजी का जाल कहा जा सकता है किन्तु शराब पीती–पिलाती स्थिति में उनकी सेक्स की भूख इतना बढ़ जाती है कि आगा–पीछा सोचे बिना चौबे को अपना अब तक का सुरक्षित, संचित यौवन अर्पित कर देती है।

उनकी इस छवि को उपन्यासकार के ही शब्दों में देखना और परखना उचित है – ''लरजती देह की गन्ध चौबे के नथुनों में भरने लगी थी। खिड़कियों से देखा, बाहर दोपहर का सूर्य चटक धूप में स्वयं तप रहा था। हाथ में आये पैग को बुआ जी ने खुद उनके होंठो से लगा दिया और चौबे जी ने देखा बुआ जी का आँचल सरककर नीचे आ गया था। बीसों साल का–वैधव्य पहली बार अँगड़ाई लेकर पोर–पोर चटका रहा था। बुआ जी ने अपना पैग आधा खाली कर बाकी चौबे जी के होठों से लगा दिया...। दैहिक प्यास अपने समाधान में जल स्रोत की तलाश में सक्रिय हो गई थी। चौबे जी उठे और अपनी बलिष्ठ बाँहों में बुआ जी को उठा लिया। निगाहों का मौन उन्हें अतीत, भविष्य की चिंताओं से मुक्त करता हुआ वर्तमान के माँसल सेज पर ला पटका। जिंदगी की चट्टान पर तरूणाई की बर्फ हल्की तपिश में भी पिघलने लगी थी। बर्फ की एक–एक बूँद टपक–टपक कर दैहिक तपन को शीतलता प्रदान कर रही थी। एक बार फिर राजनीति जाँघों के बीच वैश्या बन अपनी जीत का जश्न मना रही थी।'' (पृष्ठ–91)

बुआ जी की दैहिक तपन इस मिलन से तो शान्त एवं शीतल हो गई किन्तु इस कृत्य के बाद वह गर्भवती हो जाती हैं। चौबेजी इस गर्भ को अपना नहीं मानते। बुआ जी संघर्ष से अधिक अपनी प्रेमिल अदाएं और बार–बार चौबे जी के द्वारा उनकी अपनी दैहिक भूख मिटाने की निरन्तरता ने अन्ततः उन्हें चौबे जी के साथ 'सात

फेरे' लगवा ही दिया। फिलहाल इस इक्कीसवीं सदी के भारत के गाँव की यह कथा सत्य के बिल्कुल निकट हो सकती है। आज राजनीति में आई इस गिरावट को यहाँ देखा जा सकता है।

इस कृति की दूसरी नारी पात्र सुमीता है। यह–दलित परिवार की तरूणी है। बी0ए0 की छात्रा है। कुशाग्रबुद्धि की, शान्त एवं सुशील आचरण से युक्त नये–नये सपनों के संसार में खोयी रहने वाली आधुनिक विचारों की लड़की है। इसका चाचा नोहरी जो लम्पट, शराबी और कामुक प्रवृत्ति का इंसान है, जबरदस्ती उसे अपनी हवश का शिकार बना लेता है। लोक–लाज, कुल खान–दान की मान–मर्यादा के डर वश वह नोहरी के इस घिनौने कृत्य का पर्दाफाश नहीं करती है। उसकी इसी चुप्पी के कारण डरा–धमका कर नोहरी उसके साथ दसों बार बलात्कार करता है। नोहरी अपने को बचाने के लिये तथा सुमीता को बदचलन सिद्ध करने के लिए व नवयुवक रोशन पटेल से उसके शारीरिक सम्बन्ध होने की दुहाई देता हुआ पंचायत बुलाता है। भरी पंचायत में वह नोहरी द्वारा बार–बार किये गये बलात्कार का बड़ी दृढ़ता पूर्वक खुलासा करती है।

काश! वह पहली ही बार नोहरी के घृणित कृत्य का खुलकर बहादुरी और साहस पूर्वक विरोध की होती तो नोहरी की हिम्मत दोबारा न बढ़ती। उसकी दृढ़ता, साहसिकता, बौद्धिक कुशाग्रता और विचारों की आधुनिकता स्वतः ही विमर्श के कटघरे में उसे लाकर खड़ा कर देती है। यहाँ मैं विमर्श को अधिक तूल न देकर इस प्रसंग पर इतना ही कहूँगा कि नोहरी को जो वाजिब सजा पंचायत नहीं दे पायी, वह सजा 'मौत' के रूप में उसने स्वयं पा लिया। सामाजिक और जातीय बन्धन को तोड़ते हुये सुमीता और रोशन पटेल धीरे–धीरे एक दूसरे के प्रेम में डूब जाते हैं। उन युवा मनों की प्रेम–सागर में लगाई जाती डुबकी का एहसास उपन्यासकार के ही शब्दों में करना अधिक समीचीन होगा– ''एक क्षण के लिये दोनों एक दम चुप..... सुनसान जगह पर सड़क किनारे स्तब्ध खड़े थे दोनों.........कौन पहल करे.......दोनों तरफ से हलचल थी पर उसे शान्त करने की पहल कौन करे.........कि एकाएक हाथ बढ़ा दिया सुमीता ने उसकी तरफ और फिर दोनों एक दूसरे की बाहों में समाये एक दूसरे को चूम रहे– थे जी भर........चूम रहे थे बेतहाशा''। (पृष्ठ–78–79)

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

उपन्यासकार ने इस उपन्यास में पात्रानुकूल भाषा का समुचित प्रयोग किया है। देशज शब्दों, आम बोल–चाल में प्रयुक्त होने वाले उर्दू और अंग्रेजी भाषा के शब्दों तथा कहावतों, लोकोक्तियों और मुहावरों का यथा स्थान प्रयोग करके संवाद–योजना व कथोपकथन में रोचकता एवं प्रभाव–शीलता पैदा करने में सफल भी रहा है। लेखन एवं व्यावहारिक प्रयोग से दूर हो गये कुछ देशज शब्दों का पुनः प्रयोग करके उन विरूपित हो गये शब्दों को उपन्यासकार ने रूपवान बना दिया है,–जैसे–पवस्त, दिशा–फराकत, जेहन, चौचक, जँवार, घुघुरी, भेली, बकर, सट, बउवा आदि।

लेखक की शैली भी रोचक, प्रभावशाली व मन पर गहरा प्रभाव डालने वाली है। लालित्यपूर्ण शैली का यह उद्धरण उक्त कथन की पूर्णता के लिये पर्याप्त है '' ढलते–ढलते दिन सान्ध्य बेला की गोद में बैठ चुका था। झुरमुटों में पक्षियों की चहचहाहट बढ़ गई थी। डूबते सूरज की लालिमा अभी भी दूर आसमान को ललछौंहा बनाये हुये थी।'' (पृष्ठ–94,)

उपन्यासकार ने कई स्थलों पर प्रकृति–सौन्दर्य का मनोहरी चित्रण किया है। इन पंक्तियों में प्रकृति छटा देखी जा सकती है – 'अस्पताल से बाहर आये तो देखा आसमान में सूरज बादलों के बीच से बाहर–निकल रहा था......। सामने अमलताश के पेड़ों की टहनियों पर पक्षी का एक जोड़ा तिनका–तिनका जोड़कर घोंसला बना रहा था''। (पृष्ठ–252)

उपन्यासकार ने पात्रों के मनोभावों, उनके हाव–भाव, आवेश व क्रोध युक्त मुद्राओं का बड़ी ही सजगता से चित्रण किया है। अपने पुत्र बलराम की सम्पत्ति हड़पने की गन्दी नीयत और छल–छद्म युक्त कुत्सित आचरण को देखकर पिता राम बरन गरीब का आवेश युक्त– यह कथन हृदय में रोमांच पैदा करने में सक्षम है–''कागज हाथ में आते ही राम बरन गरीब ने जलती आँखों से देखा बलराम को.......बेड से उठे। दोनों हाथों से वसीयत को चीर डाला उन्होंने और टुकड़े–टुकड़े कर फेंकते हुये जोर से चिल्लाये.......'ले साले हरामी कहीं के.......ले माला बनाकर पहन इसे।'' (पृष्ठ–251)

इस उपन्यास का उद्देश्य और सन्देश भी सार्थक ही है। उपन्यासकार ने उपन्यास का अन्त सकारात्मक एवं सन्तोषप्रद–स्थिति में किया है। कहानी कला के पाश्चात्य समीक्षक 'जूनियन के ब्लाग'

के मत को उपन्यासकार ने शायद ध्यान में रखा है जो इस प्रकार है–

''कहानी का अन्त कलाजन्य उदासी में नहीं होना चाहिये। रचना–कौशल के संग नैतिक सम्वेदना को कतई नहीं छोड़ना चाहिए।'' यह उपन्यास इस दृष्टि से भी अपने लक्ष्य से भटका नहीं है। वातावरण की निर्मित एवं संवाद–योजना भी लाजबाब है। कहे से अधिक अनकहा तथ्य हृदय को काफी प्रभावित करता है।

शोभनाथ शुक्ल चौबीस वर्षों तक सरकारी कॉलेजों में प्रधानाचार्य के रूप में कार्य करते हुये अपनी प्रशासनिक जिम्मेदारी का कुशलता–पूर्वक निर्वहन किया। इस अवधि में सम्प्रति शिक्षा–क्षेत्र में व्याप्त विंगतियों, तरह–तरह के तनावों, सहकर्मियों का असहयोग और प्रबन्धकों का असम्वेदन–शील व्यवहार तथा प्रधानाचार्यों को धन–उगाही का मुख्य माध्यम समझने की–प्रवृत्ति से उपजे तनावों को डॉ0 शुक्ल जी ने भी निरन्तर झेला है। इस झेलने के क्रम में उनके अन्दर का सम्वेदनशील कथाकार भी उलझता और विद्रोही होता रहा। सच तो यही है कि आज इन्हीं कारणों से वे अपने अन्दर के रचनाकार को–सृजन और सम्मान की वह ऊँचाई नहीं दे पाये, जिसका वह हकदार था।

इस समीक्ष्यकृति के बारे में चर्चित–साहित्यकार विभूतिनारायण राय ने ठीक ही कहा है– ''यह उपन्यास अपने कलेवर में गँवई जीवन के छुये–अनछुये पहलुओं के विस्तार में जाता है, जहाँ अभावों और पारिवारिक द्वन्द के बीच कठिन संघर्ष की चेतना जीवित है।......अपने कथानक के जीवन्त पात्रों के साथ यह आँचलिक ग्राम्य कथा भाषा, भाव, कथन व केन्द्रीयता में जिस तरह गतिमान है, वह किसी भी पाठक को कथा–रस में डुबो ही देगा, ऐसा विश्वास है''।

इस सभीक्ष्य कृति का अन्र्तवाह्य कलेवर मनोरम है। 252 पृष्ठों में फैली उपन्यास की इस कथा में मुझे एकाध जगहां पर वर्तनी–दोष मिला। इस उपन्यास की छपाई बाईंडिंग उत्तम है, मूल्य रू. 300 है। इस उपन्यास की कथा और चित्रण–शैली में इतना दम है कि तीन सौ रूपये खर्च करने वाला अपने को ठगा हुआ नहीं महसूस करेगा। यह कृति अपनी रोचक शैली एवं पठनीयता के सहारे साहित्य–जगत में स्वयं ही समादृत होगी, ऐसा मुझे विश्वास है।

शैलेंद्र चौहान

34/242, सेक्टर–3, प्रतापनगर, जयपुर 302033
मो. 7838897877

व्याप्ति कविता की

उदासी एक कविता है
झरती है अविरल

प्रेम एक सद्भावना है
और आक्रोश
स्थायी भाव

तरह–तरह के मनुष्य
भांति–भांति के दृश्य, रंग
उद्योग, कल–कारखाने
खेत और बाग
नदी, झरने और पहाड़
आकाश, चांद और यान
अंतरिक्ष भी कविता है

भूख और जीवन
संघर्ष, जीत–हार, सुख–उपभोग
कामनाओं और वासना का नैरंतर्य
गहरा नीला या मटमैला समुद्र
टारपीडो लैस पनडुब्बी
युद्ध, संहार, महामारी, व्यापार
बहती लाशें, जलती चिताएं
शाश्वत कविताएं हैं

और उदासी, क्षोभ, अवसाद
कुछ भी तो कविताओं से परे नहीं
जैसे मैं नहीं रचता कविताएं
लेकिन उनसे विलग भी नहीं!

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

मौसमी चंद्रा

पटना, बिहार

प्रेमयात्रा

कहते हैं लिखने के लिए
जरूरी है यात्राएं!
नदी, तालाब, झरने, कस्बे
बर्फ, गांव, खेत, मंदिर..
उकेर सकें इन सबको
अपने कागजों पर!
किसी कवि ने लिखा है..
बिना भींगे बारिश लिखो
तो कागज सूखा रह जायेगा!
मैं इन सबसे अलग,
लिखती हूँ केवल प्रेम!
रोज करती हूं अनगिनत यात्राएं!
कल्पनाओं में भींगती हूँ
नदी–तालाब–झरनों की निर्झर बूंदों में!
तुम्हारा हाथ पकड़ नाप देती हूं
सारे खेत–खलिहान–मैदान!
सो जाती हूँ हर रात
सफेद बर्फ की चादर लिए!
क्या इतनी यात्राएं काफी नहीं..
प्रेम लिखने के लिए!

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता

घनश्याम शर्मा
केंद्रीय विद्यालय, पठियाल धार, गोपेश्वर,
चमोली, उत्तराखंड 246401
मो. 8278677890

बुजुर्ग बूढ़े हो रहे हैं

दौड़ता समय–चक्र गति–से
तोड़ता मन–मोह मति से
नेत्र नम हो ताकते–से, खुद को जैसे खो रहे हैं।
बुजुर्ग बूढ़े हो रहे हैं।

वक़्त जाना है सुनिश्चित
वक़्त उनको भी दो किंचित
जिनको जीवन देते आए, बाट उनकी जोह रहे हैं।
बुजुर्ग बूढ़े हो रहे हैं।

कोई सपने अब न बाकी
हाय! अपने अब न बाकी
तुमको जो गोदी खिलाए, स्मृति सब संजो रहे हैं।
बुजुर्ग बूढ़े हो रहे हैं।

चित्र ही होगा निशानी
झुर्रियों की अब पेशानी
उन चरण लौटो तथापि या कि बस दो पल रहे हैं।
बुजुर्ग बूढ़े हो रहे हैं।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता

निशेश अशोक वर्द्धन

देवकुली, ब्रह्मपुर, बक्सर, बिहार 802112
मो. 8084440519

जीवन चलता ही रहता है

यह काल निरन्तर चलता है,
रुकता न कभी इसका प्रवाह।
इस कालसिन्धु की धारा में,
बहता जाता है जग अथाह।
शतबार यहाँ उठती लहरें,
पल में यह ज्वार उतरता है।
जीवन चलता ही रहता है।

जब चलती है आँधी प्रचंड,
शत विटप धराशायी होते।
बढ़ता जाता है समय,विपिन में,
वृक्ष नए फिर उग आते।
पतझड़ के जाते ही वन में,
नव खगदल कलरव करता है।
जीवन चलता ही रहता है।

नाना कर्मों में लीन मनुज,
जीवन–संग्राम रचाता है।
कुछ कर्म सफल हो जाते हैं,
कुछ में वह हानि उठाता है।
सौ बार उखड़ती हैं साँसें,
उत्साह नया फिर चढ़ता है।
जीवन चलता ही रहता है।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

जब मनुज धरा पर आता है,
संबंधों से घिर जाता है।
कुछ लोग बिछड़ जाते पथ में,
कुछ से गहराता नाता है।
अगणित रिश्तों का ये उपवन,
खिलता है, कभी उजड़ता है।
जीवन चलता ही रहता है।

अनुराग कहीं पर बढ़ता है,
कुछ लोग हृदय से जुड़ जाते।
अपनत्व कहीं खंडित होता,
कुछ लोग पराए हो जाते।
यह खेल घृणा और मैत्री का,
जग में विधि रचता रहता है।
जीवन चलता ही रहता है।

विपदा के घेरे में मानव,
नयनों से नीर बहाता है।
सुख में अधरों पर हास्य लिए,
नित–नित खिलता ही जाता है।
सुख–दुख का यह पतझड़–वसंत,
आता–जाता ही रहता है।
जीवन चलता ही रहता है।

माया के वशीभूत होकर,
प्रभु को तुम क्यों बिसराते हो ?
क्षणभंगुर सुख की आशा में,
तुम अपना समय गँवाते हो।
हरिनाम–सुधारस पान करो,
इसमें ही सबकुछ बसता है।
जीवन चलता ही रहता है।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

टीकेश्वर सिन्हा 'गब्दीवाला'
बलोद, छत्तीसगढ़
मो. 9763269282

रवि ने पट खोला

रवि ने पूरब का पट खोला,
सुबह–सुबह।

नीलगगन को मिली
कंचन देह।
धरती ने भी ले ली
किंचन स्नेह।
मंद–मंद मस्त मगन
मनचला पवन डोला,
सुबह–सुबह।

कौए ने बैठ छानी पर
पाँखें खुजलाई।
ओस की बूँदें लेकर
ली दूब ने अंगड़ाई।
बिही के फलों को
तोते ने फोला,
सुबह–सुबह।

दादी अम्मा परछी में
बैठ लेती गोरसी–आँच।
मीठी चाय माँ की
एक ममता भरी साँच।
चलें घूमने नंगे पाँव
बाबूजी ने बोला,
सुबह–सुबह।

छत्तीसगढ़ी शब्दों का प्रयोग :
बिही–अमरूद।
गोरसी–चुल्हा ही जैसा अग्नि स्रोत।
परछी–बरामदा।
फोलना–छिलकर खाना,
छानी–मुँडेर।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

शब्द हूं मैं

समीर उपाध्याय

श्री म्युनिसिपल हाईस्कूल, थानगढ़,
सुरेंद्रनगर, गुजरात 363520

शब्द हूं मैं।
कभी रंग बदलता हूं
कभी रूप।
कभी खुशी देता हूं
कभी गम।
कभी धूप बनता हूं
कभी छांव।
कभी पतझड़ लाता हूं
कभी वसंत।
कभी प्रकाश फैलाता हूं
कभी तिमिर।
कभी गुंजन करता हूं
कभी शोरगुल।
कभी अमी—धारा बनता हूं
कभी विष—प्याला।
कभी क्रांति की मशाल बनता हूं
कभी आरती की लौ।
कभी स्वर्ग खड़ा करता हूं
कभी नरक।
कभी भावविभोर बनाता हूं
कभी भावशून्य।
कभी ब्रह्म स्वरूप बनता हूं
कभी दानव रूप।
कभी जीवन देता हूं
कभी मृत्यु।
मैं शब्द हूं।
मेरी लीला को आज तक
ना कोई समझ पाया है
ना समझ पाएगा।
क्योंकि
मैं अपरागम्य हूं।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता

संजय कुमार सिंह
प्राचार्य, पूणिया महिला महाविद्यालय, पूर्णिया
sksnayanagar9413@gmail-com

लापता

मित्र सुमंत!
इन दिनों
मैं
किसी से मिलकर भी
नहीं मिल पाता!

तुम्हें दुख है
कि मैं
उन बातों
और मुलाकातों भी भूल गया,
जिन्हें
आसानी से कोई नहीं भूलता!

अब मैं तुम्हें
कैसे बताऊँ,
इस भीड़
और भाग–दौड़ भरी जिन्दगी में,
बरसों हुए
खुद से मिले हुए!

क्या तुम अब भी,
खुद से मिल पाते हो,
मित्र सुमंत ?

विज्ञान व्रत
एन–38 सैक्टर 25, नोएडा 201301
मोब . 09810224571

हर रस्ते की मंजिल है क्या
अंबर का भी साहिल है क्या

तुझको पाकर खोया खुद को
ये ही मेरा हासिल है क्या

तू अब पास नहीं आता है
मुझसे मिलना मुश्किल है क्या

कोई तो है तेरा कातिल
तू खुद अपना कातिल है क्या

कब से घूर रहा है मुझको
आईना कुछ गाफिल है क्या

एक नशा है मुझ पर तारी
तू मुझमें अब दाखिल है क्या!

वो जो इतना चुप–चुप–सा है
आखिर उसको कहना क्या है

मुझको जो किरदार मिला है
तुझको ही हर बार जिया है

किसकी बोली बोल रहा है
उस पर ये किसका कब्जा है

अब वो मुझको समझाएगा
मैंने जो कुछ समझाया है

प्रश्न सरीखा है उत्तर भी
क्या बतलाऊँ उत्तर क्या है

मुझको देखे जाता है वो
जाने मुझमें क्या देखा है!

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

शोध-दृष्टि

सहयोग आधार पर प्रकाश्य साझा शोधलेख संग्रह

सहयोग आधार पर प्रकाश्य साझा शोधलेख संग्रह 'शोध-दृष्टि' के लिए मौलिक शोध-लेख आमंत्रित हैं। शोध लेख किसी भी विषय-क्षेत्र से हो सकते हैं, किंतु उनकी भाषा हिंदी होनी चाहिए। आदर्श शोध लेख की शब्द-सीमा 2000 से 2500 शब्द है। यदि शोधलेख से संबंधित चित्र या आरेख हों, तो साथ में संलग्न करें।

प्रकाशन नियम-

1. अनुमानित प्रति प्रष्ठ प्रकाशन लागत व्यय 250.00 है।
2. सहयोग राशि का भुगतान रचना-चयन के उपरांत करना है।
3. 'शोध-प्रतिमान' संग्रह का प्रकाशन मई, 2022 माह में किया जाना प्रस्तावित हैं।
4. प्रत्येक शोध-लेखक को संग्रह की पाँच प्रति कोरियर/पंजीकृत डाक से प्रेषित की जाएंगी। यदि किसी लेखक को पाँच से अधिक प्रतियों की आवश्यकता हो तो वह अपनी सहयोग राशि में प्रति संग्रह 200.00 अतिरिक्त जोड़कर भुगतान करे।
5. शोध-लेख 31 मार्च, 2022 तक ही स्वीकार होंगे।
6. प्रत्येक शोध-लेखक को शोधलेख के चयन के पश्चात प्रकाशन सहयोग राशि प्रति पृष्ठ 250.00 की दर से भुगतान करना होगा। इस भुगतान में लेखकों को प्रेषित करने पर लगने वाला डाकव्यय भी सम्मिलित है। यह भुगतान 'मधुराक्षर' के भारतीय स्टेट बैंक के खाता-क्रमांक 31807644508 (IFS Code SBIN0005396, MICRCode-212002004) में जमा करें। PayTM या GooglePay के माध्यम से भुगतान करने के लिए 9918-69-5656 मोबाइल नंबर को चुनें। भुगतान करने के पश्चात रसीद व्हाट्सप्प नंबर 9918-69-5656 पर प्रेषित करें।

- किसी भी तरह का पत्र व्यवहार madhurakshar@gmail.com में करें, और विषय (Subject) में 'शोध-दृष्टि' लिखना न भूलें।

सदैव संदेह करने वाले व्यक्ति के लिए प्रसन्नता
ना इस लोक में है ना ही कहीं और।
श्रीमद्भगवद्गीता